मई
2025

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 89 | अंक- 5 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

7 ▶ व्यावहारिक अध्यात्म का मार्ग

22 ▶ जीवन को नहीं, मृत्यु को भी उद्देश्यपूर्ण बनाएँ

31 ▶ जीवन शोधन का राजमार्ग है-त्याग

43 ▶ प्रकाश का वरण करें

पराजय में विजय का बीज छिपा होता है

यदि सदा प्रयत्न करने पर भी तुम सफल न हो सको तो कोई हानि नहीं। पराजय बुरी वस्तु नहीं है। यदि वह विजय के मार्ग में अग्रसर होते हुए मिली हो। प्रत्येक पराजय विजय की दिशा में कुछ आगे बढ़ जाना है। अवसर ध्येय की ओर पहली सीढ़ी है। हमारी प्रत्येक पराजय यह स्पष्ट करती है कि अमुक दिशा में हमारी कमजोरी है, अमुक तत्त्व में हम पिछड़े हुए हैं या किसी विशिष्ट उपकरण पर हम समुचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। पराजय हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित करती है, जहाँ हमारी निर्बलता है, जहाँ मनोवृत्ति अनेक ओर बिखरी हुई है, जहाँ विचार और क्रिया परस्पर विरुद्ध दिशा में बढ़ रहे हैं, जहाँ – दुःख, क्लेश, शोक, मोह इत्यादि परस्पर विरोधी इच्छाएँ हमें चंचल कर एकाग्र नहीं होने देतीं।

किसी–न–किसी दिशा में प्रत्येक पराजय हमें कुछ सिखा जाती है। मिथ्या कल्पनाओं को दूर कर हमें कुछ– न– कुछ सबल बना जाती है, हमारी विश्रृंखल वृत्तियों को एकाग्रता का रहस्य सिखाती है। अनेक महापुरुष केवल इसी कारण सफल हुए; क्योंकि उन्हें पराजय की कड़वाहट को चखना पड़ा था। यदि उन्हें यह पराजय न मिलती, तो वे महत्त्वपूर्ण विजय कदापि प्राप्त न कर सकते। अपनी पराजय से उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी संकल्प और इच्छाशक्तियाँ निर्बल हैं, चित्त स्थिर नहीं है, अंतःकरण में आत्मशक्ति पर्याप्त से जाग्रत नहीं है,इन भूलों को उन्होंने सँभाला और उन्हें दूर करके विजय के पथ पर अग्रसर हुए।

मई–1950

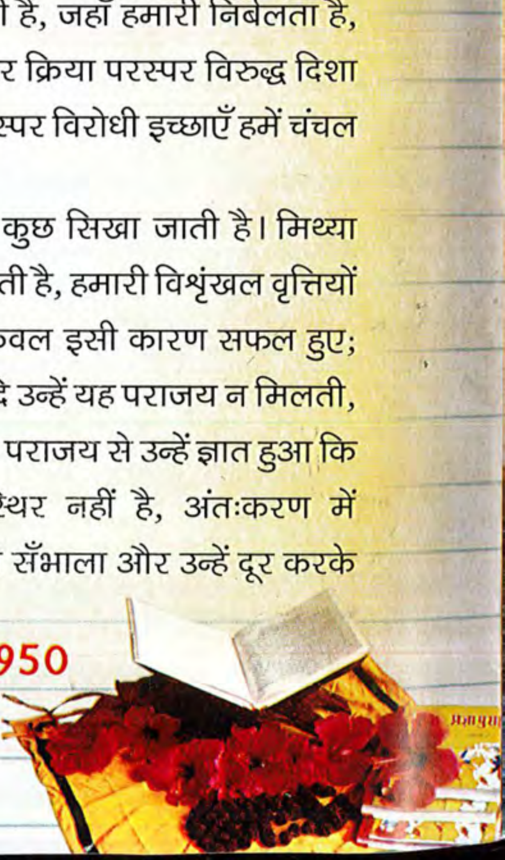

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449 2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036 7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रात: 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	89
अंक	:	05
मई	:	2025
वैशाख-ज्येष्ठ	:	2082
प्रकाशन तिथि	:	01.04.2025

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से	:	540/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से (वार्षिक)	:	+240/-

क्रमश : **गायत्री तपोभूमि**

गायत्री तपोभूमि—नाम और गुण का आध्यात्मिक सम्मिलन। गायत्री तप-साधना से तपोमूर्ति परमपूज्य गुरुदेव ने इसकी संस्थापना की। इसका दिखने वाला रूप व आकार भले ही ईंटों, सीमेंट व सरिया से बना हो, लेकिन अदृश्य में इसका निर्माण तप-तरंगों से ही हुआ। इसके लिए सबसे पहले साधना के संस्कारों से संस्कारित भूमि का चयन हुआ। अंतर्दृष्टि की आध्यात्मिक चेतना ने यहाँ युगों पूर्व की अनकही कथा को देखा। कन्हैया की कालिंदी के प्रवाह को निहारा। उसके तट पर उस युग में तप करने वाले महर्षि दुर्वासा के अनेकों आध्यात्मिक प्रयोग देखे।

इस भूमि में समाये संस्कारों ने बताया कि यहाँ पुरातन काल में केवल दूर्व-असन यानी कि सिर्फ दूब-घास का भोजन करके महर्षि दुर्वासा ने गायत्री महाविद्या के दक्षिण एवं वाम, दोनों प्रयोग किए हैं। इस सच की अनुभूति के बाद इन पुरातन संस्कारों को सबल बनाने के लिए तपोमूर्ति गुरुदेव ने गायत्री मंदिर में माता गायत्री की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए चौबीस दिन का जल-उपवास किया। इस आध्यात्मिक प्रयोग व प्रयोजन के लिए चौबीस तीर्थों का जल व चौबीस तीर्थों की रज जुटाई गई।

इसके लिए आध्यात्मिक लक्षणों से संपन्न अलग-अलग तीर्थस्थानों, तीर्थक्षेत्रों की चौबीस बालकन्याओं की चरण-रज भी एकत्रित की गई। ये सभी कन्याएँ उस समय अपना आठवाँ वर्ष पूर्ण कर रही थीं। इन सबका चयन स्वयं गुरुदेव ने किया था। यह सब कार्य चौबीस दिनों में पूर्ण हुआ। इस कार्य के समय जब पूज्य गुरुदेव चौबीस दिनों का जल-उपवास कर रहे थे, तब उस समय उनकी देह से पद्म पुष्पों की सुगंध आने लगी थी, जो बाद में माता गायत्री की चेतना में प्रतिष्ठित हो गई। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- गायत्री तपोभूमि 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  शैक्षणिक संस्थानों का उत्तरदायित्व 5
- व्यावहारिक अध्यात्म का मार्ग 7
- दिए-से-दिए को जलाना पड़ेगा 10
- आत्मसिद्धि की ओर 11
- बढ़ते रहें परम लक्ष्य की ओर 13
- अहंकार की महाव्याधि से सावधान 16
- शक्तिशाली बनें 18
- **पर्व विशेष—बुद्ध पूर्णिमा**
  रुकें नहीं, बढ़ते रहें साधना के पथ पर 19
- जीवन को नहीं, मृत्यु को भी उद्देश्यपूर्ण बनाएँ 22
- बुद्धत्व 25
- बुद्धिमान जीव-जंतुओं का रोचक संसार 28
- जीवन शोधन का राजमार्ग है—त्याग 31
- क्या बुढ़ापा कष्टकर ही होता है ? 34
- उत्तरकाशी से गंगोत्तरी धाम 35
- क्या खाएँ ? क्यों खाएँ ? कैसे खाएँ ? 39
- स्वयं को जानें 41
- प्रकाश का वरण करें 43
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—193**
  संचार माध्यमों से सकारात्मक परिवर्तन 44
- **युगगीता—300**
  कर्मों की सिद्धि के पाँच कारण 48
- **विश्वविद्यालय परिसर से—239**
  दिव्य योजना का संवाहक है विश्वविद्यालय 50
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  जीवन के देवता को, आओ तनिक सँवारें (उत्तरार्द्ध) 52
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  मनुष्य—आकृति वही, प्रकृति नई 59
- **अपनों से अपनी बात**
  प्रतिभा परिष्कार का आधार है—साधना 62
- गुरु ने किया बहुत उपकार (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

महात्मा बुद्ध ध्यान में

मई-जून, 2025 के पर्व-त्योहार

रविवार	04 मई	गंगोत्पत्ति	गुरुवार	05 जून	गायत्री जयंती/ परमपूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस
सोमवार	05 मई	जानकी नवमी	शुक्रवार	06 जून	निर्जला एकादशी
गुरुवार	08 मई	मोहिनी एकादशी	बुधवार	11 जून	कबीर जयंती
शनिवार	10 मई	नृसिंह जयंती	शनिवार	21 जून	योगिनी एकादशी 'स्मा.'
सोमवार	12 मई	बुद्ध पूर्णिमा	रविवार	22 जून	योगिनी एकादशी 'वै.'
शुक्रवार	23 मई	अपरा एकादशी	शुक्रवार	27 जून	रथयात्रा
मंगलवार	27 मई	वट सावित्री व्रत			
गुरुवार	29 मई	महाराणा प्रताप जयंती			

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

विशिष्ट सामयिक चिंतन

शैक्षणिक संस्थानों का उत्तरदायित्व

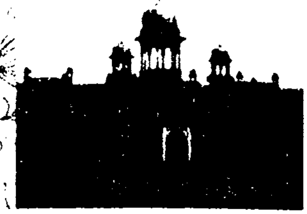

सबसे श्रेष्ठ, लोकप्रिय एवं प्रभावशील चिकित्सक वह होता है, जिसमें रोग की पहचान एवं उसके मूल तक त्वरित गति से पहुँचने की क्षमता विद्यमान होती है। जिस तरह से रोग की पहचान किए बिना इलाज शुरू करने से कोई सकारात्मक परिवर्तन संभव नहीं है, उसी तरह देश में विद्यमान समस्याओं की तह तक पहुँचे बिना, उनके समाधान का प्रयास करना भी अँधेरे में तीर चलाने जैसा ही है।

इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि पिछले अनेक दशकों से अनेक सफलताओं एवं प्रगति के बावजूद भ्रष्टाचार ने हर क्षेत्र को प्रभावित कर खोखला कर दिया है। वर्तमान में नासूर बन चुके भ्रष्टाचाररूपी दानव से निपटना देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। भ्रष्टाचार समाप्त होने पर देश की लगभग सभी समस्याओं का समाधान संभव है।

अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ शिक्षा भी भ्रष्टाचार से अछूती नहीं रही है। शिक्षा पर भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा प्रहार यह हुआ है कि इसने शिक्षा के उद्देश्यों को ही परिवर्तित कर दिया है। आज शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना है एवं शिक्षा की सफलता के आकलन का आधार पैकेज माना जाने लगा है।

दया, करुणा, परोपकार, नैतिक, चारित्रिक एवं मानवीय मूल्यों का शिक्षा के उद्देश्यों से दरकिनार होना हमारी बहुत बड़ी असफलता है। नियम अब आर्थिक एवं बाजारू आधार पर तय किए जा रहे हैं। निजी क्षेत्र की शिक्षा के क्षेत्र में अनियंत्रित प्रवेश इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

शिक्षा के क्षेत्र में सबसे पहले इस पर विचार होना चाहिए कि निजी क्षेत्र की सार्वजनिक क्षेत्र से तुलना होनी भी चाहिए अथवा नहीं? यदि तुलना करनी भी है तो किस सीमा तक की जाए? उद्देश्यों में भिन्नता के कारण निजी क्षेत्र की सार्वजनिक क्षेत्र से तुलना करना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होगा; क्योंकि न चाहते हुए भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि निजी क्षेत्र का प्रमुख उद्देश्य केवल लाभ की प्राप्ति ही होती है, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के बारे में हम ऐसा नहीं कह सकते हैं।

निजी क्षेत्र की कुछ अच्छी गतिविधियों का अनुसरण सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को भी करना चाहिए, लेकिन किसी भी स्थिति में वर्तमान परिस्थितियों में निजी क्षेत्र हमारा आदर्श नहीं होना चाहिए।

सरकारी शिक्षण संस्थानों से निकले छात्रों में निजी शिक्षण संस्थानों की तुलना में परिवार के प्रति अधिक दायित्वबोध एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना देखने को मिलती है। विदेश जाकर करोड़ों कमाने वालों की तुलना में छोटी-सी नौकरी कर अपने बूढ़े माता-पिता की देख-भाल करने वाले भाई की मेहनत एवं त्याग को कमतर आँकना हमारी बदलती प्राथमिकताओं एवं आकलन पर बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न है।

जब तक छात्रों और शिक्षकों के बीच भावनात्मक संबंध स्थापित नहीं होगा, तब तक शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों को प्राप्त करना एवं छात्रों में अनुशासन की भावना जाग्रत करना लगभग असंभव ही है। आजकल लगभग सभी बड़े शिक्षण संस्थानों में आई समस्याओं का एक प्रमुख कारण छात्रों में अनुशासन की भावना के प्रभाव का कम होना भी है।

शैक्षणिक संस्थानों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षण एवं शोध के लिए अनुशासन बहाली तथा सुरक्षा पहली प्राथमिकता होनी चाहिए, लेकिन आश्चर्य की बात है कि अनुशासन बहाली 24 घंटे का काम होने के बावजूद विश्वविद्यालयों में हम यह जिम्मेदारी अतिरिक्त प्रभार के रूप में दे रहे हैं।

कुलपति की नियुक्तियों में यूजीसी का पालन न करने को लेकर देश के लगभग हर प्रदेश में बहुत से प्रकरण न्यायालयों में विचाराधीन हैं। यह खोज का विषय होना चाहिए कि न्यायालयों में लंबित इस तरह के कितने प्रकरणों में यूजीसी के प्रतिनिधि ने अपनी असहमति दर्ज नहीं की है अथवा समय पर यूजीसी (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) को अवगत नहीं कराया है।

इस तरह के प्रकरणों में प्राध्यापकों के लिए निर्धारित योग्यता न रखने वाले लोगों की नियुक्ति के लिए खोज समिति के सदस्यों को भी दोषी माना जाना चाहिए। यूजीसी विनियम के अनुसार 'सर्वोच्च दक्षता, सत्यनिष्ठा, नैतिकता एवं संस्थागत प्रतिबद्धता के सर्वोच्च व्यक्तियों को ही शैक्षणिक पदों में नियुक्त किया जाएगा।'

कोई व्यक्ति यह जानते हुए भी कि यूजीसी द्वारा प्राध्यापक हेतु निर्धारित योग्यताएँ वह पूरी नहीं कर रहा है, इसके बावजूद भी यदि वह उस पद के लिए अपना आवेदन प्रस्तुत कर रहा है तो ऐसे व्यक्ति से हम कितनी सत्यनिष्ठा एवं नैतिकता की अपेक्षा कर सकते हैं—इसका अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

किसी भी शिक्षक के मन में प्रशासनिक पदरूपी महत्त्वाकांक्षा का भाव आना ही उसके आदर्श शिक्षक होने के प्रति संदेह उत्पन्न करता है। वर्तमान व्यवस्था में नौकरशाही की महत्त्वपूर्ण भूमिका एवं दखलंदाजी से कोई इनकार नहीं कर सकता है।

जब तक नौकरशाहों के चयन का आधार नहीं बदलेगा, तब तक देश में आमूलचूल परिवर्तन बहुत ही मुश्किल है। कोचिंग संस्थानों से निकलने वाले लोकसेवकों से परोपकार की भावना की अपेक्षा रखना समुद्र में मोती ढूँढ़ने के समान है।

प्रशासनिक सेवाओं में चयनित होने वाले अधिकारियों में ऐसे बहुत कम ही होंगे, जिन्होंने अपने अध्ययनकाल के दौरान राष्ट्रसेवा में सक्रिय भूमिका निभाई हो। शिक्षा एवं शैक्षणिक संस्थानों को नौकरशाही से दूर रखकर ही हम सकारात्मक परिवर्तन की अपेक्षा कर सकते हैं।

आज का युगधर्म है—जनजागरण के लिए प्रचंड पुरुषार्थ में जुट पड़ना। यही होने भी जा रहा है। —*परमपूज्य गुरुदेव*

शिक्षा को बलपूर्वक एवं अन्य विभागों की तरह संचालित करने के परिणाम बहुत ही भयावह होंगे। हमें शिक्षा एवं शिक्षा के उद्देश्यों को पुन: परिभाषित कर इस पर विचार करना होगा कि शिक्षा सहित अन्य सभी क्षेत्रों में आई गिरावट के लिए कौन जवाबदेह है।

'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन' (इसरो) की सफलता को ध्यान में रखकर हमें यह तय करना चाहिए कि नौकरशाही की किन-किन क्षेत्रों में एवं कितनी भूमिका न्यायोचित होगी। हमें साहसिक एवं क्रांतिकारी निर्णयों के माध्यम से समस्या की तह तक पहुँचकर इसका निदान करने की आवश्यकता है। ❑

व्यावहारिक अध्यात्म का मार्ग

जीवन का विषाद बढ़ चला था। घर से ऑफिस, ऑफिस से घर की भाग-दौड़ और समाज-संसार के चक्रव्यूह के बीच अपने लिए टिककर स्वाध्याय और सोचने की फुरसत ही नहीं मिल पा रही थी। जीवन की डोर उलझती जा रही थी, जिसको सुलझाने के लिए किसी तत्त्वदर्शी मार्गदर्शन की आवश्यकता अनुभव हो रही थी।

सुना था कि पास की पहाड़ी की एक कंदरा में आजकल हिमालय से एक तत्त्वदर्शी संत आए हैं, उनसे सत्संग के उद्‌देश्य से अभिश्रेष्ठ शांति-समाधान की तलाश में निकल पड़ा। आशा थी कि जीवन की गुत्थी का कुछ तो समाधान मिल ही जाएगा और नहीं तो प्रकृति की गोद में सैर हो जाएगी और मन कुछ तरोताजा हो जाएगा।

घर से गाँव के स्टेशन तक बस में चढ़कर फिर आगे पैदल यात्रा शुरू हुई। कुछ ही मिनटों में गाँव भी पीछे छूटता गया और संकरी पगडंडी के सहारे संतप्त अभिश्रेष्ठ घने जंगल के मध्य चढ़ाई को पार कर रहा था। रास्ते में वन की नीरवता के मध्य भयमिश्रित शांति का एहसास हो रहा था और मन में कल्पना का भूत मँडरा रहा था कि कहीं जंगली जानवरों से सामना न हो जाए।

ये जंगल भालू, बघेरे, हाथी और जंगली सुअरों के लिए कुख्यात हैं, लेकिन प्रायः इनके हमले रात को व सायंकाल में अधिक होते हैं, जब इनके रास्ते में अचानक कोई राहगीर प्रकट हो जाते। भयाक्रांत अवस्था में ही ये हमला करते हैं या फिर भूख लगने पर करते हैं, लेकिन इस घने जंगल में इनके आहार की कोई कमी नहीं थी। फिर तत्त्वदर्शी संत के दर्शन के लिए बढ़ रहे पग अगाध ईश्वरीय आस्था के साथ पूरित थे कि दैवी संरक्षण जब साथ में हो तो फिर भय कैसा?

फिर भी यदि कुछ होता है तो देखा जाएगा। अभिश्रेष्ठ हाथ में अपनी ऊँचाई का एक मोटा लट्‌ठ भी साथ लिए हुए था, अप्रत्याशित खतरों से निपटने के लिए और पहाड़ में चढ़ाई के बीच यह उसके लिए सहारे का भी काम कर रहा था। इस तरह आध-पौन घंटे की चढ़ाई के बाद उसे एक पहाड़ी झरने का सामना हुआ, वहाँ कुछ लोग पानी भरने के लिए आए थे, जिनको देखकर वह कुछ आश्वस्त हुआ कि अब निर्जन क्षेत्र पार हो चला और वह बाबा की कंदरा के समीप है।

संत की गुफा में आए इन स्वयंसेवकों के संग अभिश्रेष्ठ चल पड़ा और कुछ ही मिनटों में बाबा की कंदरा में पहुँच गया। कंदरा के बाहर धूनी सुलग रही थी, बाबाजी एक आसन पर विराजमान थे। उनको साष्टांग प्रणाम कर साथ लाए कुछ फल-फूल व आहार सामग्री भेंटकर अभिश्रेष्ठ उनके पास बैठ गया।

जिज्ञासु भक्तों की एक टोली वहाँ पहले से विराजमान थी। अंतर्यामी संत को सबकी कथा-व्यथा मालूम थी, फिर भी सबसे एक-एक कर मिल रहे थे और उनकी समस्याओं के समाधान की आश्वस्ती दे रहे थे। इसके उपरांत सामूहिक रूप से बना भोजन, प्रसाद ग्रहण कर सभी कंदरा के बाहर एक बड़े पीपल पेड़ के नीचे मैदान में बैठ

गए, जहाँ जीवन-साधना के सिद्ध सूत्रों की सत्संग प्रसादी बँटने वाली थी।

चबूतरे पर बैठे तत्त्वदर्शी ऋषि की लंबी जटाएँ और शुभ्र दाढ़ियों के बीच झलकती तेजस्वी आँखें बहुत कुछ कह रही थीं। शांत, धीर-गंभीर और ठहरी हुई वाणी ऋषि-मुख से ऐसे निस्सृत हो रही थी, जैसे गोमुख से पतितपावनी निर्मल गंगाजी।

संत शिरोमणि जीवन-साधना का राजमार्ग बताने वाले थे, जिसे कोई भी गृहस्थ, संसारी अपने व्यस्ततम कार्य व्यापार के बीच भी निभा सके। समय व कर्मकांड से अधिक इसमें श्रद्धा, निष्ठा व समर्पण का बंधन था, जिसमें समस्त योग साधनाओं एवं व्यावहारिक अध्यात्म का सार प्रकाशित होने जा रहा था।

सभी आगंतुक श्वास थामकर ऋषि-मुख से निकलने वाले शब्द-ब्रह्म को सुनने के लिए तत्पर थे। ध्यान की गहराई में अर्धोन्मिलित नेत्रों के संग संत ने अपना सत्संग प्रारंभ किया और ज्ञानगंगा प्रवाहित हो निकली।

वे बोले—''इस सुरदुर्लभ मानव जीवन को सिद्ध करने के लिए ईश्वर ने सभी साधन बीजरूप में इसी तन में दिए हैं। बस, इनके प्रति जागरूक होने भर की देर है।

''यह शरीर ईश्वर का मंदिर है, जिसको हर स्थिति में स्वच्छ, स्वस्थ एवं नीरोग रखना है। ईश्वर तो सर्वव्यापी और सर्वांतर्यामी हैं और आत्मदेव की साधना ही उनकी कृपापात्र बनने का सबसे प्रत्यक्ष एवं प्रभावशाली मार्ग है। साधना के क्रम में सबसे पहले अपनी जिह्वा को साधें, जो दोहरे प्रयोजन सिद्ध करती है—पहला है स्वाद और दूसरा है वाणी।

''इन दोनों क्रियाओं के इर्द-गिर्द जीवन का समूचा व्यापार टिका हुआ है। इनमें थोड़ी-सी लापरवाही रोग-शोक, तनाव, कलह-क्लेश एवं दुर्घटनाओं का कारण बनती है। इतिहास की लोमहर्षक घटनाएँ इनके इर्द-गिर्द केंद्रित रही हैं। यदि इनका संयम बरता गया होता तो समाज-संसार की स्थिति कुछ और होती। व्यक्तिगत जीवन में भी यह सत्य है।

''जिह्वा का पहला संयम स्वाद पर नियंत्रण से सिद्ध होता है। स्वाद का संयम मिताहारी बनाता है। न भूखा रहकर शरीर को तड़पाना है और न ही ठूँस-ठूँसकर इसे आलस्य व रोग का अड्डा बनाना है।

''आहार का संयम शरीर को स्वस्थ व नीरोग रखता है और मन को भी ध्यान-साधना के लिए उपयुक्त बनाए रखता है। सप्ताह में एक दिन का उपवास रही- सही कसर को पूरा कर देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भोजन औषधि के रूप में प्रसाद की तरह ग्रहण किया जाए।

''दूसरा वाणी का संयम, लोक-व्यवहार में बहुत महत्त्वपूर्ण है। संसार आज अनावश्यक शब्दों के कोलाहल से दूषित हो चला है, जिस कारण चारों ओर अशांति का माहौल बना हुआ है। ऐसे में व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन में शांति की कामना बेईमानी है, जब हर पल संवाद की जगह आपसी विवाद, मतभेद एवं कलह के बीज बोए जा रहे हों। अतः कम बोलें, मधुर बोलें और कल्याणकारी शब्द ही मुँह से निकलें और एक ईश्वर की संतान, होने के नाते एकदूसरे के साथ सदाशयता एवं सौहार्द का व्यवहार करें।

''यदि कुछ सार्थक कहने के लिए नहीं है तो मौन रहना बेहतर है। तभी बोलें, जब कुछ सार्थक, सकारात्मक एवं शांति-समाधानपरक बात करने के लिए हो। यही आपसी तालमेल एवं सामंजस्य की कुंजी है और इसी में मन की शांति व स्थिरता

का राज भी छिपा है। कालांतर में यही वाक्साधना माँ सरस्वती की आराधना है, ईश्वर की उपासना है। परचर्चा एवं परनिंदारूपी प्रपंच से भी सदैव दूर ही रहें। जीवन में शांति-समाधान का यह सरल एवं व्यावहारिक उपाय है।

"तीसरा अपनी दृष्टि पर ध्यान दें। कदम-कदम पर प्राणहंता प्रलोभन के मायावी आकर्षण से सावधान रहें, जो व्यक्ति को मोहित कर विचलित करने की भरसक चेष्टा करेगा, लेकिन ये सजगता के पल ही तप एवं साधना की परीक्षाएँ हैं।

"यदि परीक्षा के इन पलों में सजग रहा गया, मस्तिष्क श्रेष्ठ विचारों से भरा रहा व अपने इष्ट के चरणों में निमग्न रह गया तो समझना कि बहुत बड़ी साधना हो चली। सिया-राममयी, शिव-शक्तिमयी दृष्टि के साथ इस सृष्टि को निहारने का अभ्यास बन पड़ा तो, यह एक बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी।

"ऐसे आचरण-व्यवहार के संग जीवन-साधना अध्यात्म के उच्च सोपानों की ओर अग्रसर हो रही होगी। इसके साथ ही अपने कर्त्तव्य कर्मों में प्रवृत्त रहें। यही व्यावहारिक अध्यात्म का सार है, धर्म का मार्ग है, जो आंतरिक स्थिरता शांति के साथ चित्तवृतियों के निरोध को सरल बनाएगा।

"बिना आशा-अपेक्षा के साथ किए गए सेवाकार्य चित्तशुद्धि का अचूक उपाय हैं और अपने कर्त्तव्य धर्म को निभाए बिना किए गए कर्मकांड एवं पूजा-पाठ आत्मिक रूप से निष्फल हो जाते हैं। इसके साथ हर कार्य के प्रारंभ, अंत एवं मध्य में ईश्वर की स्मृति तथा अपने सद्गुरु के वचनों के प्रति जागरूकता जीवन-साधना के अनमोल उपाय हैं, जिनमें प्राणपण से संलग्न रहना है।

"इस कलिकाल में गुफा-कंदरा में कठोर तप-साधनाओं और हठयोगियों के अभ्यास की अभी उतनी आवश्यकता नहीं है। बीच-बीच में इन अभ्यासों में भी प्रवृत्त हुआ जा सकता है, लेकिन जीवन-साधना के उपरोक्त व्यावहारिक सूत्र दैनंदिन जीवन को प्रकाशित करने वाले हैं और जीवन को प्रकाशित करने वाले आगे के मार्ग को भी सरल बनाने वाले हैं।"

हिमालय से आए संत की दिव्य वाणी को सभी जिज्ञासुगण मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे, हृदयंगम कर रहे थे और अपने-अपने समाधान पाकर कृतकृत्य अनुभव कर रहे थे। अभिश्रेष्ठ को जीवन-साधना का पाथेय मिल गया था। इन सूत्रों को गाँठ बाँधकर वह रास्ते भर इनका चिंतन-मनन करते हुए जंगल को पार करके अपने गाँव में लौटा और वहाँ से बस में बैठकर अपने घर की ओर चल निकला।

उसे लग रहा था कि अपने कर्त्तव्य-पथ पर डटे रहना ही जीवन का साधना पथ है और आत्मदेव की साधना ही सर्वोपरि है। इसी आधार पर उपासना के पल दैवी संवाद के माध्यम बनते हैं और समय-समय पर अंतर्वाणी के रूप में उचित समाधान की व्यवस्था करते हैं। ❑

एक राजा था। संसार में सबसे धनी बनने की लालसा उसे थी। संयोगवश उसके दरबार में एक सिद्ध पुरुष का आगमन हुआ। राजा ने प्रसन्न मन से उनकी आवभगत की एवं आतिथ्य में कोई भी कसर नहीं छोड़ी। इस सत्कार से प्रसन्न होकर सिद्ध पुरुष ने वर माँगने को कहा सो राजा ने बिना सोचे माँग लिया—"मैं जो हाथ से छू लूँ, वह सोना हो जाए।" वरदान मिल गया। राजा प्रसन्न था कि जिस वस्तु को चाहूँ, सोना बना लूँगा। इसी फेर में उसके भोजन के पदार्थ—अन्न, सब्जी, रोटी और गिलास का पानी आदि सभी हाथ में आते ही सोना बनने लगे। भूख से अति व्याकुल राजा लाचार होकर सोचने लगा कि धनवान बनने की जल्दबाजी में मैंने स्वयं अनर्थ मोल ले लिया।

दिए-से-दिए को जलाना पड़ेगा

अंधकार ने दिए को चुनौती दी है कि वह न जले। अंधकार के साथ इसकी सहचरी शक्तियों ने भी इसमें सहयोग करने की ठानी है। सो हवा, बारिश से लेकर तूफान सब कृतसंकल्प हैं कि दीपक को जलने न दिया जाए; क्योंकि दिए के जलने का अर्थ है कि अंधकार का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

अंधकार के लिए यह उसके अस्तित्व की लड़ाई है। स्वाभाविक रूप में उसे दिए का जलना पसंद नहीं। यही स्थिति इस समय अंधकार की शक्तियों की है, जो इनसान के अंदर भी हैं और इनसान के बाहर भी। अंदर वे आलस्य-प्रमाद, राग-द्वेष, लोभ-मोह तथा स्वार्थ-अहंकार के रूप में अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं और चित्त के अँधेरे कोने-कांतरों में जन्म-जन्मांतरों से कुसंस्कारों के रूप में जड़ जमाए हुए हैं।

ये नहीं चाहते कि मानव का देवत्व जगे, जिससे इनका दीर्घकाल से चला आ रहा वर्चस्व समाप्त हो जाए। इनसान का आत्मजागरण इनके हित में नहीं। अंतर का यही अंधकार बाहर चापलूसी, मक्कारी, मूढ़ता, दर्प-दंभ एवं दुष्टता-धूर्तता के रूप में अपना मायावी साम्राज्य फैलाए हुए है, जो इससे भी आगे भ्रष्टाचार से लेकर हिंसा, अपराध, नशा, शोषण, अंधविश्वास एवं कुरीतियों के आसुरी आतंक के रूप में अपने पाँव पसारे हुए है।

यह अंधकार समाज को इसके मकड़जाल में उलझा हुआ देखना चाहता है, जिससे इसकी सत्ता बनी रहे और इसका मायावी परिवार फलता-फूलता रहे। जाग्रत सामूहिक चेतना इसके आसुरी अस्तित्व के लिए खतरा है।

समूह की अज्ञानता, भीरुता, आपसी कलह, बिखराव, मूढ़ता इनके लिए वरदान है, जिसके ऊपर इनकी कुटिल रणनीतियाँ बखूबी कामयाब होती हैं और इनका व्यापार चलता रहता है तथा इनकी योजनाएँ काम करती रहती हैं।

यदि मनुष्य सजग सचेष्ट हो गया, प्रकाश-पथ का अनुगामी बन गया, सत्य-धर्ममार्ग पर आरूढ़ हो गया, आत्मनिर्भर बन चला तो यह इनके मायावी वर्चस्व के लिए चुनौती से कम नहीं। वस्तुतः बाहर जो अंधकार दृश्यमान हो रहा है, वह व्यक्ति के अंदर के अंधकार का विस्तार है।

जब यह अंधकार सामूहिक मन में घर कर जाता है, तो सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर चेतनात्मक संकट के बादल गहरा जाते हैं। पूरे विश्व में अशांति-आतंक-भय-असुरक्षा का वातावरण छा जाता है।

समाधान व्यक्ति के अंदर देवत्व के उदय एवं प्रकाश के अवतरण में निहित है। इसके लिए व्यक्ति को पहले स्वयं को प्रकाशित करना होगा, अपना दिया जलाना होगा और फिर दिए-से-दिया जलाते हुए प्रकाश का विस्तार करना होगा।

अतः पहले मनुष्य में देवत्व का उदय और फिर धरती पर स्वर्ग का अवतरण होना है और इसका शुभारंभ स्वयं के, अंदर के अँधेरे को दूर करने के सचेष्ट, संकल्पित एवं समर्पित प्रयास-पुरुषार्थ के साथ होना है, जिसे साधनात्मक प्रयास कह सकते हैं।

यही युगधर्म है और यही युग-साधना भी। इस पुनीत कार्य में स्वयं प्रवृत्त होना है और दूसरों को इसके लिए प्रेरित करना है। ❑

आत्मसिद्धि की ओर

उपनिषदों में आत्मा ही श्रेष्ठ है, परंतु आत्मसिद्धि का मार्ग बड़ा कठिन है। इस मार्ग पर चलने वाले को अनेक विपदाओं और समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक बाधाओं को झेलना पड़ता है। इस मार्ग पर चलने के लिए अदम्य उत्साह, दृढ़ इच्छाशक्ति एवं अटल साहस की आवश्यकता होती है। यही नहीं, बल्कि यह मार्ग लंबा भी बहुत है, जिसके लिए दीर्घ पुरुषार्थ, अभ्यास और निरंतर चलते रहने की जरूरत होती है।

सोते-जागते, चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते, हर समय आत्मलक्षी, आत्मज्ञानी एवं आत्मवृत्ति होने की आवश्यकता होती है। संकल्प है, विचार है, आचार है तो सोऽहम्। मैं और वह का भेद समाप्त हो जाता है। आत्मा निरहंकारी बन जाती है, केवल वही वह रह जाता है। भूल और मिथ्या धारणा का अंत उसके पीछे-पीछे चलने से नहीं होता, न भुलाने से होता है और न उससे मुँह छिपाने से ही होता है। वह मृगमरीचिका की भाँति आगे-आगे और छाया की भाँति पीछे-पीछे चलती रहती है; क्योंकि यह हमें सब ओर से घेरे हुए है।

उसकी समाप्ति दाएँ-बाएँ चलने से भी नहीं होती है, उसका अंत तो जहाँ हो वहीं से, उसी स्थान पर उसका सामना करने से होता है। अज्ञान का अंत न तो संदेह में पड़े रहने से होता है और न ही अनिश्चित मति से बने रहने से होता है। उसका अंत उसके मंतव्यों और ज्ञातव्यों को स्पष्ट और साक्षात् करने से होता है। उसमें सत्य-असत्य, हित-अहित, निज-पर का विवेक करने से होता है।

मोह का अंत परंपरागत भावों की सिद्धि-वृद्धि करने से होता है, तृष्णा और वासना को हृदय में बसाने से नहीं होता है। मोह का अंत मुग्धाकार भावों की मूढ़ता देखने, उसकी निंदा, आलोचना और प्रायश्चित करने से होता है। उनकी गति का निरोध और संवरण करने से होता है, उन्हें अहिंसामय बनाने से होता है।

इस तरह सांसारिक कारणों का अंत प्रवृत्ति से नहीं, निवृत्ति मार्ग से होता है। इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि आत्मसिद्धि का मार्ग केवल निषेध, संवर और संन्यास रूप नहीं है, बल्कि यह विधिरूप भी है। निषेध, संवर और संन्यास आत्मसिद्धि का पहला सोपान है, साधक पाद-पीठिका है।

इसमें अभ्यस्त होने से आत्मा सिद्धिमार्ग पर आरूढ़ रहने में समर्थ हो जाती है। वह स्थिर उज्ज्वल और शांत हो जाती है, लेकिन इतना होने के बावजूद काम नहीं चलता है। मिथ्यात्व, अज्ञान और मोह का समूल नाश नहीं हो जाता; क्योंकि ये अनादिकाल से अभ्यास में आने के कारण अंतश्चेतना की गहराई में पैठ गए हैं, जो किसी भी समय फल-फूल सकते हैं।

वे अकारण ही आत्मा को उद्विग्न, भ्रांत और अशांत बना देते हैं। जब तक उनके गुप्त संस्कारों का अंत नहीं हो जाता, तब तक संसार चक्र का अंत नहीं होता। इन संस्कारों को समाप्त करने के लिए निषेध के साथ विधि को जोड़ना पड़ता है। प्रमाद छोड़कर सदा सावधान और जागरूक रहना पड़ता है। समस्त परंपरागत भावों, संज्ञाओं और वृत्तियों से अपने को पृथक करना पड़ता है।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

इंद्रिय और मन को बाहर से हटाकर भीतर ले जाना पड़ता है। अपने में ही स्वयं को जाना होता है, ध्यानस्थ होना पड़ता है। यह मार्ग आत्मश्रद्धा, आत्मबोध, आत्मचर्या का मार्ग है। सत्य-पारमिता, प्रज्ञा-पारमिता, शील-पारमिता का मार्ग है। सत्य दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र का मार्ग है।

यह एक ऐसा मार्ग है, जो गहरे-से-गहरे बैठे हुए संस्कारों को जीर्ण और विध्वंस कर उन्हें जाग्रत और सचेत बना देता है। आत्मसिद्धि का यह मार्ग किसी बाह्य विधि-विधान, क्रियाकांड, परिग्रह-आडंबर में नहीं रहता।

यह किसी भाषा, वाक्य या ग्रंथ में नहीं रहता। यह मार्ग साध्य के अनुरूप ही अलौकिक और गूढ़ है। यह त्रिशक्ति ही संसार की साधक है। यह त्रिशक्ति ही मोक्ष की साधक है। यदि कोई भेद है तो केवल इनके उपयोग का है, इनकी गति का है।

यदि शक्तियों को बाहर से हटाकर अंतर्मुखी बना दिया जाए, इन्हें परसिद्धि के बजाय आत्मसिद्धि में लगा दिया जाए, इन्हें बाह्य उद्देश्य, बाह्य ज्ञान और बाह्य उद्देश्य, आत्मज्ञान और आत्मपुरुषार्थ में बदल दिया जाए तो यह त्रिशक्ति संसार के इस पार से उस पार के जाने वाली होती है।

यह मोक्ष का आधार बन जाती है। मृत्यु के बजाय अमृतप्रदाता हो जाती है। यह त्रिशक्ति आत्मा में ही रहती है, आत्मरूप है यह। आत्मा ही साधक है, साधन है और साध्य है। आत्मा ही पथिक है, पंथ है और इष्टपद है।

यह त्रिशक्ति एकता में रहकर ही सिद्धि की साधक है अन्यथा नहीं। जिस प्रकार इनकी बाह्यमुखी एकता संसार की साधक है, उसी प्रकार इनकी अंतर्मुखी एकता मोक्ष की साधक है। संसार में किसी भी प्रकार की सिद्धि केवल उसकी कामना करने से नहीं होती; केवल उसका बोध करने से नहीं होती, बल्कि कामना और बोध के साथ पुरुषार्थ जोड़ने से होती है। परमात्मपद की सिद्धि केवल उसमें श्रद्धा रखने से, केवल उसे जान लेने से नहीं होती, बल्कि आत्मश्रद्धा और आत्मज्ञान के साथ आत्मपुरुषार्थ जोड़ने से होती है।

जो साधक परमात्मपद को अपना उद्‌देश्य बनाता हुआ आत्मज्ञान से उसे देखता और जानता हुआ आत्मपुरुषार्थ से उसकी ओर विचरता है, वही सत्य मार्ग है, वही जीवन-पथ है। वही धर्म है, धर्ममूर्ति है, धर्मतीर्थ है, धर्मावतार है। उसके समस्त संशयों का उच्छेद हो जाता है, सारी तृष्णाएँ शांत हो जाती हैं।

वही आत्मज्ञानी, आत्मलक्षी और निरहंकारी है। उसके लिए शत्रु क्या, मित्र क्या, जन्म क्या, मरण क्या ? मृत्यु उसके लिए मृत्यु नहीं, वह मृत्यु का मृत्यु है, मोक्ष का द्वार है। यह सब अनासक्ति, समर्पण एवं भक्तिभाव से ही संभव होता है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

बढ़ते रहें परम लक्ष्य की ओर

यदि मन में लक्ष्य प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प हो, कभी न हार मानने वाला प्रचंड आत्मबल हो और नित्य निरंतर प्रचंड पुरुषार्थ करते हुए लक्ष्य की ओर, मंजिल की ओर बढ़ते हुए कदम हों, तो कठिन-से-कठिन, असंभव-से-असंभव मंजिल भी प्राप्त होकर रहती है। मंजिल की ओर बढ़ते हुए व्यक्ति के मन में कई बार विरोधी व नकारात्मक विचार आते हैं, जो उसे हतोत्साहित करते हैं और आगे बढ़ने से रोकते हैं।

कई बार विरोधी विचार आकर्षक रूप धारण कर व्यक्ति को अपने मिथ्या आकर्षण व प्रलोभन में फँसाकर, उलझाकर उसे उसके मार्ग से विचलित करते हैं, पर जो इन तमाम आकर्षणों, प्रलोभनों, विरोधी व नकारात्मक विचारों, कठिनाइयों, संघर्षों, प्रतिकूल परिस्थितियों से सर्वथा अप्रभावित रह कर अपने लक्ष्य की ओर, मंजिल की ओर बढ़ता जाता है उसे ही अंततः विजयश्री मिलती है, उसे ही मंजिल मिलती है और यह सिद्धांत भौतिक और आध्यात्मिक—दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से लागू होता है।

हमारा लक्ष्य भौतिक हो या आध्यात्मिक, दोनों ही प्रकार के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, दोनों ही क्षेत्रों में सफलता पाने के लिए व्यक्ति में दृढ़ संकल्प, प्रचंड आत्मबल और निरंतर प्रचंड पुरुषार्थ आवश्यक है। प्रचंड आत्मबल, दृढ़ संकल्प और प्रचंड पुरुषार्थ से कठिनाइयों के बीच से भी रास्ता मिल जाता है, मंजिल मिल जाती है।

इसको लेकर एक बड़ी रोचक कथा है कि कई जन्मों पूर्व बोधिसत्व का जन्म काशी नरेश ब्रह्मभद्र के यहाँ छोटे पुत्र के रूप में हुआ। वे राष्ट्राध्यक्ष बनना चाहते थे। कनिष्ठ पुत्र होने के नाते वैसा अवसर उन्हें मिलने वाला न था सो उन्होंने तांत्रिक महासिद्ध प्रत्यंग से अपनी मनोकामना की पूर्ति का उपाय पूछा।

महासिद्ध ने बताया कि आगामी मास में तक्षशिला का सिंहासन रिक्त होने वाला है। यदि वे तुरंत चल पड़ें तो अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकते हैं। पूर्णिमा के दिन प्रभातकाल में राजद्वार पर खड़े व्यक्ति को ही सिंहासन मिलेगा, यह नियति की व्यवस्था है।

आकांक्षा तीव्र होने के कारण वे चल पड़े। उनके 5 घनिष्ठ मित्र भी उनके साथ चल पड़े। चलते समय वे महासिद्ध प्रत्यंग का आशीष लेने पहुँचे सो उन्होंने सफलता का आशीर्वाद तो दिया, पर साथ ही यह भी बता दिया कि मार्ग में यक्षवन पड़ता है। उस वन में रूपसी यक्षिणियों का ही अधिकार है। वे रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श जैसे साधनों से ही राहगीरों को लुभाती, भोगती हैं और अंत में मारकर खा जाती हैं। इस विपत्ति से बच कर चलने में ही तुम्हारी भलाई है।

बोधिसत्व साथियों सहित चल पड़े। जल्दी की आतुरतावश विराम-विश्राम पर कम और चलते रहने पर अधिक ध्यान था। यात्रा पर, मंजिल पर अधिक ध्यान था। चलते-चलते रास्ते में यक्षवन आया। यक्षवन को लेकर राजकुमार तो सतर्क थे, पर उनके साथ चल रहे उनके मित्र-साथी उन कसौटियों पर खरे नहीं उतरे। एक ने पैर की मोच का बहाना लिया व एक रूपसी के यहाँ विराम हेतु

रुक गया। दूसरे दिन दूसरा साथी लुभावने शब्दजाल में जा बँधा।

उसी प्रकार तीसरे-चौथे-पाँचवें मित्र भी एक-एक करके इन क्षणिक प्रलोभनों, आकर्षणों में मोहित हो बँधते चले गए और अंततः एक दिन प्राण गँवा बैठे, पर संकल्प और प्रचंड आत्मबल के धनी बोधिसत्व किसी प्रलोभन में, आकर्षण में फँसे नहीं, बँधे नहीं, रुके नहीं और आगे बढ़ते ही चले गए। यक्ष समुदाय के लिए यह प्रतिष्ठा का प्रश्न था कि कोई उनके जाल में फँसे बिना निकल जाए सो एक चतुर यक्षिणी बोधिसत्व के पीछे लगा दी गई, पर उसकी उपेक्षा करते हुए बोधिसत्व आगे बढ़ते रहे। यक्षिणी उनके पीछे चलती रही।

राहगीरों के पूछने पर वह यक्षिणी बोधिसत्व के बारे में बताती—"ये मेरे जीवन प्राण हैं। उपेक्षिता होने पर भी मैं छाया की तरह अपने जीवन प्राण के साथ चलूँगी।" राहगीर बोधिसत्व को समझाते कि अपनी जीवन संगिनी की उपेक्षा करना कतई उचित नहीं है। राहगीरों के इस प्रकार समझाने पर बोधिसत्व उन्हें वस्तुस्थिति बताते तो भी कोई उनकी बातों पर विश्वास नहीं करता।

यक्षिणी जब स्वयं को बोधिसत्व से गर्भवती हुई बताती, स्वयं को गर्भिणी, असहाय कहती और विलाप करती तो उसका पक्ष और भी प्रबल हो जाता और राहगीर भी उसे ही सत्य मान लेते, पर इन सभी झूठे प्रलोभनों, आकर्षणों से अविचलित, अप्रभावित बोधिसत्व अपने लक्ष्य की ओर बढ़े चले जा रहे थे।

अंततः सभी कठिनाइयों को पार करते हुए, यक्षवन को पार करते हुए बोधिसत्व समय पर तक्षशिला पहुँच गए एवं मुहूर्त की प्रतीक्षा में एक कुंज में निवास करने लगे, किंतु तब तक यक्षवन की उस सुंदरी की चर्चा सर्वत्र दावानल की तरह फैल गई। ऐसा सौंदर्य किसी ने देखा न था। यह खबर राजमहल तक पहुँच गई।

राजा ने उस सुंदरी को देखा तो होशोहवास खो बैठे और उस यक्षिणी को पटरानी बनाने का प्रस्ताव रखा एवं राजा ने उस यक्षिणी की यह शर्त भी मान ली कि राजमहल के भीतर रहने वाले सभी अंतःवासियों पर उसका अधिकार होगा। इस प्रकार जब यक्षिणी बोधिसत्व को लुभाने, फँसाने में सफल नहीं हुई तो उसने बोधिसत्व को भुला दिया और नए अधिकार क्षेत्र में प्रवेश कर राजा को अपने मोह-जाल में फँसाकर अभीष्ट लाभ उठाने में जुट गई।

उसने यक्षवन में अपनी सभी सहेलियों को भी बुलावा भेज दिया और उसकी सभी सहेलियाँ भी राजमहल आ धमकीं। सभी एक-एक करके महल के घरों में रहने वालों के साथ लग गईं व एक-एक करके सभी को छूँछ, निष्प्राण बनाती गईं और अंततः उन सबको उदरस्थ कर गईं। इस प्रकार नियत मुहूर्त से एक दिन पहले ही राजमहल का घेरा अस्थिपिंजरों से भर गया। राजा-प्रजा में से कोई न बचा।

बाहर स्थित नगरवासियों द्वारा जब किले का फाटक तोड़ने और भीतर की स्थिति देखने की तैयारी हुई तो वहाँ बोधिसत्व खड़े थे। उन्होंने स्तंभित प्रजा-जनों को आदि से अंत तक सारी कथा कह सुनाई। नगर को यक्षिणी के त्रास से मुक्ति दिला सकने योग्य बोधिसत्व ही लगे, सो उन्हें राज-सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया गया। प्रचंड पुरुषार्थ-मनोबल संपन्न राजा के कारण यक्षिणियों की मंडली को भी पलायन करना पड़ा।

सिंहासनारूढ़ बोधिसत्व ने कुछ समय उपरांत प्रबुद्ध प्रजाजनों की एक संसद बुलाई और कहा—"शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श की 5 यक्षिणियाँ,

इंद्रिय लिप्साओं के रूप में हर व्यक्ति को लुभाती हैं, प्रलोभन देती हैं और उसे निष्प्राण कर उसका सर्वनाश कर डालती हैं, पर जो उनके प्रलोभन में नहीं फँसते वे सर्वत्र विजयी होते हैं। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श के रूप में इंद्रिय लिप्साओं का जिस किसी भी व्यक्ति पर आधिपत्य होगा, उसका सर्वनाश होकर रहेगा और जो इन इंद्रिय लिप्साओं से मुक्त रहेगा, वही सर्वत्र विजयी होगा।''

उपरोक्त कहानी का सार संदेश यही है कि जो इंद्रिय लिप्सा, वासना, कामना के आकर्षण, प्रलोभन, मोह-जाल में फँस जाता है वह अपनी शारीरिक-मानसिक ऊर्जा, जीवन-ऊर्जा का सर्वनाश कर डालता है तो ऐसे ऊर्जाहीन, ऊर्जाविहीन व्यक्ति को लोक-परलोक, भौतिक-आध्यात्मिक, कहीं भी सच्चा सुख एवं संतोष प्राप्त नहीं होता। अस्तु हमें बोधिसत्व की तरह दृढ़ संकल्प के साथ अपने जीवन के परमलक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहना चाहिए।

जीवन-पथ पर चलते हुए, परम लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए हमें भी यक्षवन अर्थात इंद्रिय लिप्सा के आकर्षणों और प्रलोभनों के बीच से गुजरना होगा। यदि हम उन आकर्षणों, प्रलोभनों से अविचलित रहते हुए अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ते रहे तो बोधिसत्व की तरह हमें भी हमारी मंजिल एक-न-एक दिन मिलकर रहेगी। इसमें कोई संशय नहीं। कोई संदेह नहीं।

जो मार्ग पर चलता जाता है, बढ़ता जाता है, उसे उसकी मंजिल मिल ही जाती है। अतः हम भी उस मार्ग पर, उस पथ पर अविराम चलते रहकर तो देखें! ❑

भीष्म पितामह महाभारत के रण में हत हुए तो काल उनको लेने आया। भीष्म अत्यंत पुण्यात्मा थे, उन्होंने काल को दुत्कार कर भगा दिया—''मैं कर्मयुक्त हूँ। तेरे अधीन नहीं हूँ। तेरे बुलाने से नहीं जाऊँगा, जब मेरे भगवान मुझे लेने आएँगे, तब जाऊँगा।''

भगवान श्रीकृष्ण सायंकाल उनसे मिलने पहुँचे, तब तक शर-शय्या बन चुकी थी, उनके रोमकूपों से रक्त बह रहा था। भीष्म ने श्रीकृष्ण को देखकर प्रश्न किया—''प्रभु! मैंने जीवन भर कोई पाप नहीं किया, फिर इतना कष्ट क्यों भुगतना पड़ रहा है?''

श्रीकृष्ण बोले—''तात! आपने पाप नहीं किया यह सत्य है, पर पाप होते समय, उस घटना के मूक साक्षी बनकर उसके भागी बने हैं, यह उसी का कुफल है।''

भीष्म को द्रौपदी के वस्त्रहरण की घटना याद आ गई। धर्म की दृष्टि सूक्ष्मतम होती है, हर छोटे-बड़े कर्म का परिणाम मनुष्य को स्वीकार करना ही पड़ता है।

अहंकार की महाव्याधि से सावधान

अहंकार एक महाव्याधि है, जो पग-पग पर तथाकथित समझदार मनुष्य को त्रास देती रहती है। इस महाव्याधि का स्वरूप इतना मायावी है कि सामान्यतया व्यक्ति को एहसास ही नहीं हो पाता कि वह अहंकार की माया के पाश में जकड़ा हुआ है और इसकी किश्ती में सवार होकर व्यक्ति जीवन की मझधार में इतराता फिरता है और अपने से नीचे के व्यक्तियों का उपहास, व्यंग्य उड़ाने से लेकर उन्हें हेय दृष्टि से देखने की धृष्टता कर रहा होता—इस बात से बे-खबर की कब उसकी अपनी नाव मझधार में पलट जाएगी।

अहंकार की मदहोशी में उसे इसकी भी सुध नहीं रहती; क्योंकि अहंकार व्यक्ति की विवेक-बुद्धि, मानसिक क्षमता का हरण कर लेता है। उसे लगता है कि वह इस समय अपने दायरे में ईश्वरतुल्य सर्वशक्तिमान है, उसके इशारे पर उसकी दुनिया की चीजें घटित हो रही हैं, लेकिन अहंकार के मद में चूर व्यक्ति को अपने पैर के नीचे की जमीन का बोध नहीं रहता तथा उसकी वाणी-व्यवहार में दर्प-दंभ और अहंकार तरह-तरह से नाना रूपों में फूटते रहते हैं और कर्मों का स्वचालित विधान संचित कर्मफल के रूप में इसकी भावी नियति को तय कर रहा होता।

तब तक तो ये कर्म प्रारब्ध का रूप लेकर परिपक्व हो जाते हैं और काफी देर हो चुकी होती है। अत: अहंकाररूपी महाव्याधि से समय रहते सावधान रहने की आवश्यकता है। इसके सर्वग्रासी एवं पतनकारी स्वरूप को समझते हुए इसके नियमन के प्रयास अभीष्ट हैं, जो अपने चिंतन, चरित्र से लेकर वाणी-व्यवहार में आजमाए जा सकते हैं, लेकिन माया के पाश में आबद्ध जीवात्मा सामान्यतया इसके खेल को समझ नहीं पाती।

शेखी बघारने से लेकर, आत्ममुग्धता एवं तानाशाही रवैये के रूप में अहंकारी के दर्प-दंभ का नग्न नृत्य देखा जा सकता है। हीनता, आत्मदया एवं स्वयं से घृणा के रूप में भी इसे ही छद्मरूप में सक्रिय देखा जा सकता है। निश्चित रूप से धन, सत्ता, शक्ति एवं बड़ी उपलब्धि आने पर किसी को भी अहंकार होना स्वाभाविक है।

बड़े-बड़े शूरमाओं, त्यागी-तपस्वियों को इसके चक्रव्यूह में फँसते देखा जाता है, फिर सामान्य व्यक्ति की तो बिसात ही क्या? समझदार वही हैं, जो इसके बंधनकारी स्वरूप को समझ पाते हैं व इसके निम्नगामी प्रवाह को सँभाल पाते हैं। अपना होश बनाए रखते हैं, अपनी समता को बरकरार रख पाते हैं और हर परिस्थिति में अपनी विवेक-बुद्धि से काम लेते हैं।

लोक-व्यवहार में कोई भी व्यक्ति अहंकारी का सम्मान नहीं करता। सभी ऐसे व्यक्ति से बचते फिरते हैं, दूर भागते हैं। परिस्थितिवश मजबूरन उनके साथ व्यवहार करना पड़े तो शिष्टाचारवश उनके आगे सर झुकाते हैं, लेकिन पीठ पीछे उनका वह आदर नहीं रहता; क्योंकि व्यक्ति की अंतरात्मा एक अहंकारी व्यक्ति की क्षुद्रता के सामने श्रद्धानत् नहीं हो सकती और अध्यात्म-क्षेत्र में तो इसका विधान और भी स्पष्ट एवं कठोर है।

अध्यात्म-क्षेत्र में अहंकार को भयंकर व्याधि माना गया है। जब तक व्यक्ति में अहंकार का लेशमात्र भी शेष है, अध्यात्म के साम्राज्य में उसका प्रवेश नहीं होता।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश तब प्रस्फुटित होता है, जब अर्जुन शरणागत स्थिति में हाथ जोड़कर एक जिज्ञासु के भाव में सामने खड़े होते हैं। अपने क्षात्रबल के अहंकार को त्यागकर, एक भक्त-शिष्य की मनोभूमि में ईश्वरीय वाणी को सुनने के लिए तैयार होते हैं। अत: शिष्य-साधक को अहंकाररूपी महाव्याधि से हर हालत में सावधान रहने की आवश्यकता है।

अध्यात्म-क्षेत्र में प्रगति का मार्ग अहंकार के त्याग एवं गुरु के प्रति भक्तिभाव के साथ ही प्रारंभ होता है। हृदय में जीवन के परम सत्य को जानने की उत्कंठा तथा गुरु के प्रति श्रद्धा-समर्पण के आधार पर ही भक्ति का उदय होता है, अहंकार का विगलन होता है और अध्यात्म-क्षेत्र में प्रवेश की प्रक्रिया प्रारंभ होती है।

अहंकार के मिटते ही व्यक्ति में सज्जनता शालीनता, सादगी, सात्त्विकता जैसे सद्गुण अनायास ही बढ़ते चले जाते हैं; जबकि अहंकार की भ्रांति व्यक्ति को पग-पग पर आत्मप्रदर्शन के पाखंड रचने के लिए प्रेरित करती है।

अहंकार शक्ति की तनिक-सी उपलब्धि से मदोन्मत्त हो उठता है। तनिक-सा धन, सत्ता, विभूति और प्रशंसा पाकर अहंकार अपनी औकात को भुला बैठता है। अहंकार से फूला व्यक्ति एक ऐसे भ्रम में जीता है कि जैसे उसने क्या पा लिया और वह क्या बन गया?

अहंकाररूपी भेद-बुद्धि न केवल मनुष्य को स्वयं से दूर कर देती है, बल्कि मूल स्रोत परमात्मा से भी भिन्न कर देती है। अपने जीवन एवं अस्तित्व के यथार्थ से कटा व्यक्ति अहंकार के अंधकार में अपनी सही स्थिति को अनुभव नहीं कर पाता और विराट अस्तित्व से अपने संबंध को भुला बैठता है और परिणामस्वरूप जीवन के मूल ध्येय से वंचित रह जाता है।

अहंकार का जाल-जंजाल ऐसा है, जिसमें फँस जाने वाला अपनी वास्तविक शक्तियों का इस प्रकार उद्धत प्रयोग करता है कि घाटा निरंतर बढ़ता ही चले। जो कुछ पास में था, उसका सदुपयोग करते कुछ बना और आगे बढ़ा जा सकता था—वह आत्मप्रदर्शन के कुचक्र में ही बरबाद हो जाता है। अहंकारी हर दृष्टि से घाटा-ही-घाटा उठाता है।

इस तरह मनुष्य के विनाश का सबसे प्रबल कारण अहंकार ही है और यह भगवान के सबसे अप्रिय गुणों में से एक है। फिर भी आश्चर्य कि यह अहंकार भाव कितना बलवान है कि यह जो मनुष्य को बार-बार अपने शिकंजे में कसता रहता है। इसके बचाव का एक ही तरीका है कि अपनी विवेक-बुद्धि को जाग्रत रखा जाए, अपनी भाव-संवेदना को जीवंत रखा जाए और गुरु के वचनों के प्रति प्रगाढ़ आस्था एवं ईश्वर के प्रति समर्पण भाव के साथ अपने जीवन-ध्येय की ओर नैष्ठिक रूप से बढ़ते रहा जाए। ❑

भीतवत्संविधातव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं द्रष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत्॥

अर्थात जब तक डर का कारण उपस्थित न हो, तब तक उसके निराकरण के उपाय तैयार कर लेने चाहिए और उसके सामने आ उपस्थित होने पर उसे निर्भय होकर मार भगाना चाहिए।

शक्तिशाली बनें

मनुष्य का इस धरती पर आगमन एक साधारण प्राणी की तरह होता है। वह आश्रित रहता है, दूसरों की सेवा-सहायता द्वारा ही उसके जीवन में रौनक आती है। धीरे-धीरे वह विकसित होता जाता है तथा एक दिन अपने को परिपक्व कहने लगता है, परंतु यहाँ पर उसका स्वत्व कहाँ पर है—ऐसा क्या है, जो उसकी विशेषता कहलाए। इसे ढूँढ़ लेने पर ही आत्मा की पुकार चरितार्थ होती है।

हम ईश्वर के साधन हैं—उसकी व्यवस्था के अंग हैं तथा कल्याण के प्रसार हेतु गतिशील हैं। जब हमारी यह गलत परिभाषा दे दी गई कि हमें तो इस-इस प्रकार ही चलना है तथा कोई नैसर्गिक विधान नहीं तभी सभी प्रकार की विकृतियाँ शुरू हुईं। यदि ध्यान दे सकें तो दिखेगा कि हमें अपनी वास्तविक सत्ता से कितना दूर रखा गया है।

सत्य की प्राप्ति को हम बेचैन नहीं रहते तथा क्षुद्र स्वार्थों को ही अपनाए रहते हैं। इसे बदलना है तो जाग जाइए उस शक्ति के प्रति, जो हमें मिली है। जिन्हें भी आगे बढ़ना है तथा सार्थकता का वरण करना है, वे इसे समझें।

पूर्णत: निर्विकार होने में ही भलाई है। इसके उपरांत ही वह संयंत्र कार्य करता है, जिसके लिए हम बने हैं। हमें शक्तिशाली होना है, प्रत्येक पीड़ा-अवरोध से परे उस एकत्व में जा बसना है, जो कि हमें अपने गंतव्य तक पहुँचाने में समर्थ है। यह साधना कठिन नहीं, मात्र हमें अपने अंतर्नेत्र खोलने पड़ते हैं एवं जिन उलझावों में हम रहते हैं उनसे मुक्त हो प्रेरणा का पक्ष लेना होता है।

सर्वतोभावेन अपनी सत्ता का विलीनीकरण उस सत्य को मूर्तिमान करने का एक अद्भुत सुयोग है, जिसे ज्ञानियों ने उत्कर्ष का जनक कहा है। हम वहीं पर स्थापित हों शेष अन्य कल्पनाएँ त्याग दें तथा उस महानता का वरण करें, जो कि हमारा अधिकार है।

इस संसार में जहाँ भी पाप एवं संकीर्णता है, वह शक्ति के अभाव में है। उसकी प्रतिष्ठा हेतु हमें कदम उठाने चाहिए तथा वही हमारे व्यक्तित्व का आधार बनना चाहिए। उसी से ओत-प्रोत सभी गतिविधियाँ हों तथा चहुँओर उसी का प्रकाश बिखरे—ऐसा प्रयास सदा करते रहना चाहिए। ❑

यज्ञ यह है कि मनुष्य के पास अपनी सत्ता में जो कुछ है, उसे वह उच्चतर या दिव्य प्रकृति को अर्पित कर दे और इस यज्ञ का फल यह होता है कि उसका मनुष्यत्व देवों के मुक्तहस्त दान के द्वारा और अधिक समृद्ध हो जाता है। जो संपत्ति इस प्रकार यज्ञ करने से प्राप्त होती है वो आध्यात्मिक ऐश्वर्य, समृद्धि, आनंद की अवस्था से निर्मित होती है और यह अवस्था स्वयं की यात्रा में सहायक होने वाली शक्ति है।

—महर्षि अरविंद

पर्व विशेष-बुद्ध पूर्णिमा

रुकें नहीं, बढ़ते रहें साधना के पथ पर

एक वृद्ध व्यक्ति, बीमार व्यक्ति और एक मृत व्यक्ति को देखकर सिद्धार्थ को लगा कि इस संसार में दुःख-ही-दुःख है और तभी उनके मन में वैराग्य की भावना जाग पड़ी और अचानक एक रात वे अपनी पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल सहित समस्त सगे-संबंधियों व राजमहल के सुख-वैभव का त्यागकर जीवन के सत्य की खोज में निकल पड़े। वर्षों तक तप-साधना करते हुए अंततः उन्हें एक पीपल के वृक्ष के नीचे परम ज्ञान की प्राप्ति हुई और वे सिद्धार्थ से तथागत बुद्ध हो गए।

भगवान बुद्ध की यह कहानी सदियों से सुनी और सुनाई जा रही है और यह कोटिशः लोगों को प्रेरित करती रही है, पर बुद्ध की यह कहानी सुनने और सुनाने में, पढ़ने और पढ़ाने में तो बहुत सरल और आसान प्रतीत होती है, पर यह कहानी किसी के जीवन में उतनी ही सरलता से घटित नहीं होती। किसी के जीवन में जब ऐसी कहानी घटित होती है, तब वह पग-पग पर उस व्यक्ति की परीक्षा लेती है। प्रकृति पग-पग पर उसकी तपस्या की, साधना की, धैर्य की, पात्रता की परीक्षा लेती है। तब जाकर कोई सिद्धार्थ—बुद्ध बन पाता है।

साधक को, सिद्धार्थ को वर्षों तक साधना-पथ पर अगणित कठिनाइयों, प्रतिकूलताओं से होकर गुजरना पड़ता है और जो साधक, जो सिद्धार्थ साधना-पथ की चुनौतियों, कठिनाइयों, प्रतिकूलताओं, संघर्षों को धैर्य व संयमपूर्वक सहता हुआ आगे बढ़ता जाता है—अंततः उसे ही विजयश्री प्राप्त होती है। उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति होती है। सिद्धार्थ को बुद्ध बनने में भी अगणित कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

घर-परिवार, राजमहल के सुख-वैभव को छोड़कर सिद्धार्थ ने सत्य की खोज में स्वयं को समर्पित किया तो स्वाभाविक ही था कि उन्हें अनेकों कष्ट-कठिनाइयों से मुकाबला करना पड़ा हो। राजसी सुविधाओं के अभ्यस्त सिद्धार्थ के लिए अरण्यवास वैसे ही असुविधाजनक रहा था और फिर ऊपर से कठिन तितिक्षा, साधनाएँ और कठोर व्रत-उपवास।

भोजन की मात्रा घटाते-घटाते एकदम निराहार रहने लगे, वस्त्र इतने कम हो गए कि दिशाएँ ही वस्त्र बन गईं। फिर भी लक्ष्य अभी दूर ही रहा। कभी मन में यह विचार भी आता कि मन की शांति ही मृगतृष्णा है। साधना करने से क्या लाभ ? पर इन विरोधी विचारों के बीच से गुजरते हुए भी वे लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहे।

सरदी-गरमी, धूप-बारिश, भूख-प्यास आदि को सहते हुए वे अग्रसर होते रहे, पर कठिनाइयाँ, विषम परिस्थितियाँ ऐसी थीं, जो समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही थीं। अस्तु आखिरकार लंबे समय तक कष्ट-कठिनाइयों को सहते हुए, झेलते हुए अब सिद्धार्थ का धैर्य भी जवाब देने लगा था।

जिस धैर्य का संबल पकड़कर वे साधना-समर में उतरे थे वह अब जवाब देने लगा और उनका मनोबल, संकल्प डगमगाने लगा और जो सिद्धार्थ साधना-पथ पर अब से पूर्व अग्रसर हुए जा रहे थे, वे विचलित होने लगे और घर वापस लौटने

की तैयारी करने लगे। जब वे घर की ओर लौट रहे थे तो रास्ते में एक ठंढे जल की झील आई।

झील के किनारे खड़े होकर वे उसे देखने लगे। तभी उनकी दृष्टि एक गिलहरी पर पड़ी, जो बार-बार झील में डुबकी लगाती, बाहर आती, रेत में लोटती और पुनः झील में डुबकी लगाने के लिए दौड़ पड़ती। यह देखकर बुद्ध को बड़ा आश्चर्य हुआ।

देर तक वे उसे देखते रहे, जब गिलहरी की क्रिया में कोई अंतर नहीं आया तो आखिर वे पूछ ही बैठे—नन्ही गिलहरी! यह तुम क्या कर रही हो? इस झील ने मेरे बच्चों को खा लिया है और अब मैं इसे खाली करके ही रहूँगी। गिलहरी ने उत्तर दिया।

बुद्ध ने पुनः प्रश्न किया—भला बताओ तो अनुमानतः यह कितने समय में हो सकेगा? गिलहरी ने तपाक से जवाब दिया कि इसका अनुमान लगाने का मेरे पास समय नहीं है। इस जन्म में तो संभव नहीं है। भले ही न हो। पर मैं अपने काम को अधूरा छोड़ कर भागूँगी नहीं। परंतु इतना तो निश्चित है कि इस प्रकार चुल्लू-चुल्लू भर पानी निकालकर मैं अपना काम तो पूरा करने की ओर बढ़ती ही रहूँगी। गिलहरी यह कहकर अपने काम में पुनः लग गई कि मेरे पास बातें करने का समय नहीं है, मुझे काम करने दो।

गिलहरी की इन बातों को सिद्धार्थ ने कानों से तो कम, हृदय से ही अधिक सुना और उनका खोया हुआ आत्मविश्वास पुनः लौट आया। उनकी अंतःचेतना से यह आवाज आई कि यह नन्ही-सी गिलहरी भी अपनी सामर्थ्य, समय और क्षमता का विचार किए बिना आजीवन इस बोझिल कार्य को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध है तो मैं ही क्यों इतनी जल्दी हार मान लूँ, जबकि मेरा लक्ष्य तो सुनिश्चित है और उस लक्ष्य की ओर मैं काफी हद तक आगे बढ़ चुका हूँ। उन्होंने बीच में ही अपना विचार बदल दिया और पुनः तपःस्थली की ओर लौट गए।

वे आकर उस तपःस्थली पर पुनः आसीन हुए और यह संकल्प लिया कि जब तक मैं सत्य की प्राप्ति न कर लूँ, तब तक अपने आसन से उठूँगा नहीं। सत्य की प्राप्ति होने तक मैं अपने आसन पर ही आसीन रहूँगा, तप करूँगा, ध्यान करूँगा और सत्य की प्राप्ति करके रहूँगा। इस प्रकार गिलहरी ने उनके जीवन का एक नया अध्याय खोल दिया।

आत्मविश्वास की कमी ही हमारी बहुत-सी असफलताओं का कारण होती है, शक्ति के विश्वास में ही शक्ति है।

जिन्हें अपने पर तथा अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं है वो मन से कमजोर हैं, चाहे वो शरीर से कितने ही बलवान क्यों न हों।

सिद्धार्थ पुनः ध्यानस्थ हो गए और उस समय तक साधना में लगे रहे, जब तक उन्हें निर्वाण प्राप्त नहीं हो गया। उस दिन पूर्णिमा की रात्रि थी। पूर्णिमा के पूर्ण चंद्रमा की तरह उनकी साधना पूर्ण हुई और उनके हृदय में सत्य का प्रकाश ज्ञान बन कर वैसे ही उतर आया, जैसे कि आकाश में चंद्रमा निकलता है। उन्हें बोध प्राप्त हुआ, ज्ञान प्राप्त हुआ। आसन पर बैठते समय तक वे भले ही सिद्धार्थ थे, पर वे अब सिद्धार्थ नहीं रहे; क्योंकि सत्य का बोध होते ही वे बुद्ध हो चुके थे। सिद्धार्थ अब बुद्ध हो चुके थे।

हममें से अधिकांश लोग भी साधना-पथ पर चलने का संकल्प लेते हैं, साधना प्रारंभ भी करते हैं, पर कुछ दिनों की, महीनों की, वर्षों की साधना के पश्चात भी लक्ष्य की प्राप्ति न होने के कारण अपना धैर्य खोने लगते हैं, उनका संकल्प कमजोर होने लगता है। उनका मनोबल क्षीण होता जाता है और अंतत: वे साधना से मुँह मोड़ लेते हैं।

वे पुन: संसार के आकर्षण में डूबने लगते हैं और साधना उन्हें नीरस लगने लगती है। साधना उन्हें बेकार की चीज लगने लगती है, पर जिन्हें अपने गुरु पर, आराध्य पर, भगवान पर, मंत्र पर पूर्ण विश्वास है, श्रद्धा है, वे मार्ग में आने वाली कठिनाइयों, संघर्षों, कष्टों को भी पार करते जाते हैं। वे कठिनाइयों में भी जप, तप, ध्यान नहीं छोड़ते। वे संसार के आकर्षण में नहीं फँसते और कभी भी साधना का त्याग नहीं करते।

वे साधना संबंधी नियमों-अनुशासनों का पालन करने को प्रतिबद्ध होते हैं। प्रकृति भी उनका सहयोग करती है। सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमात्मा उन साधकों की सच्ची श्रद्धा, निष्ठा, समर्पण, पात्रता देखकर उनके मार्ग की कठिनाइयों को दूर कर देते हैं। गुरु भी उनकी साधना में सहायक होते हैं। परमात्मा उनके संकल्प व मनोबल को प्रेरणा और बल प्रदान कर उन्हें कभी भी हार मानने नहीं देते और अंतत: वैसे साधकों को ही अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति होती है। अस्तु कभी रुकें नहीं, झुकें नहीं, टूटें नहीं; बल्कि साधना के पथ पर सदैव बढ़ते रहें। ❑

गायत्री परिजनों का एक दल मध्य प्रदेश से आया हुआ था। सुबह मिलने के क्रम में पूज्य गुरुदेव से भेंट हुई। पूज्य गुरुदेव ने एक दिन पूर्व तो आत्मबोध-तत्त्वबोध साधना पर उद्‍बोधन दिया था। मिलने वालों के मन में उसी साधना-प्रयोग के संदर्भ में जिज्ञासा थी, सो उनमें से एक ने प्रश्न किया—''गुरुदेव! आप कल आत्मनिरीक्षण, आत्मसमीक्षा के विषय में बोल रहे थे। आत्मसमीक्षा करते समय हमें क्या ध्यान रखना चाहिए।'' गुरुदेव बोले—''बेटा! मानवीय मन की एक विकृति है कि हमें अपने दोष दिखाई नहीं पड़ते। स्वयं के दुर्गुणों को मनुष्य सहजता से लेता है; जबकि दूसरों की छोटी भूलों को भी बड़ा मुद्दा बना लेता है, इसलिए अपनी गलतियों को, भूलों को देखने की आदत डालो और उनके सुधार की व्यवस्था बनाओ। याद रखो कि अपने पापों को कभी भूलो नहीं और अपने पुण्यों को कभी याद मत रखो। यदि कुछ अच्छा काम हो जाए तो उसे भगवान का अनुग्रह मानकर, उनको अर्पित कर दो। पुण्य याद रखने से अहंकार बढ़ता है और पाप याद रखने से अहंकार गलता है। जो अपने को गला लेता है, वह महापुरुष बन जाता है।'' उन परिजनों की जिज्ञासा का सहज समाधान गुरुदेव ने कर दिया।

जीवन को नहीं, मृत्यु को भी उद्देश्यपूर्ण बनाएँ

मृत्यु इस जीवन का अंतिम सत्य है, एक अकाट्य तथ्य है, फिर भी इसे सामान्यतया स्वीकार नहीं किया जाता, हृदयंगम नहीं किया जाता, बल्कि इसके प्रति इतना भय रहता है कि सामान्य इनसान मृत्यु पर विचार करने तक से कतराता है, इसका सामना करने का साहस भी नहीं कर पाता।

विरले ही इस पर गंभीर विचार कर इसका सामना करने व इसके पार निकलने की युक्ति पर चिंतन-मनन का दुस्साहस कर पाते हैं और शाश्वत जीवन के अधिकारी बनते हैं। फिर अपनी मृत्यु के बारे में विचार नहीं कर पाना भी इस अस्तित्व का एक कटु सत्य एवं शाश्वत आश्चर्य है।

जब पांडवों से यक्ष ने प्रश्न किया था कि इस संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? तो इसका उत्तर देते हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा था कि संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि नित्यप्रति दूसरों को मरते हुए देखकर भी मनुष्य अपनी मृत्यु पर विश्वास करने को तैयार नहीं। उसे लगता है कि और कोई भले ही मर जाए, पर वह स्वयं सदा-सर्वदा इस धरती पर बना रहेगा।

साथ ही मृत्यु को जीवन का सबसे बड़ा भय माना गया है; जिसके कई कारण हैं। प्रमुख कारण तो देह के प्रति आसक्ति का भाव है। अपनों के प्रति मोह तथा अर्जित संपदा के प्रति लोभ इसके दूसरे कारण हैं, जिनके खोने-छिनने का भय सदा बना रहता है।

मृत्यु में तो उसे सब कुछ यहीं पीछे छूटता दिखता है। फिर मृत्यु से जुड़े कष्ट का कल्पित भय भी उसकी आत्यंतिक दुविधा का एक बड़ा कारण रहता है। साथ ही यह सोच भी रहती है कि हम नहीं रहेंगे तो घर-परिवार, समाज-संसार का काम कैसे चलेगा, हमारे बिना आश्रितों का क्या होगा।

यह सत्य है कि आश्रितों की चिंता स्वाभाविक है और उनके लिए उचित व्यवस्था करना पावन कर्त्तव्य है, लेकिन स्वयं को सृष्टि का कारण मानना भी एक बड़ा भ्रम है। दूसरों के लिए अपने को सब कुछ समझना दंभ है; क्योंकि सृष्टि मूलतः ईश्वरीय संकल्प एवं इच्छा से चल रही है। जब हम नहीं थे, तब भी संसार का सारा काम चल रहा था और जब नहीं रहेंगे, तब भी सब काम चलता रहेगा।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।

अर्थात ऋचाएँ उस परम आकाश में रहती हैं, जिसने सब देवताओं को अपने अंदर स्थित कर रखा है।

संसार का कोई काम किसी के न रहने से रुकने वाला नहीं। कितने शूरमा, विभूतियाँ, महापुरुष और अवतारी पुरुष आए और गए, लेकिन समाज एवं सृष्टि की व्यवस्था अपनी गति से चल रही है और अपने गंतव्य की ओर बढ़ रही है। इस तरह मृत्यु ईश्वर के अटल विधान का हिस्सा है और इस सृष्टि के शाश्वत सौंदर्य का एक अभिन्न अंग भी, जिसके पीछे प्रकृति माँ के करुणा विधान को काम

करते हुए देखा जा सकता है, जिसे कई उपमाओं से परिभाषित किया गया है।

कुछ इसे महानिद्रा की संज्ञा देते हैं। दिन भर कठिन श्रम करते हुए जब हमारा शरीर थक जाता है, तो रात को सोना एक तरह से इस थकावट को मिटाने की प्रक्रिया है। रात को पूरी नींद लेने के बाद फिर हम अगले दिन के लिए तरोताजा एवं स्वस्थ होकर तैयार हो जाते हैं। नई शक्ति, स्फूर्ति और चेतनता के साथ दिन भर शाम तक अथक श्रम करते हैं।

मृत्यु भी जीवात्मा के लिए ठीक ऐसी ही स्थिति है। जीवन भर की थकावट मृत्यु की गोद में जाकर ही दूर होती है। ऐसे में अगले जीवन के लिए शक्तिदायिनी स्थिति का नाम ही मृत्यु है। इस तरह से विचार करें तो फिर मृत्यु से भय कैसा? जबकि मृत्यु के उपरांत हमें नया जीवन, नई चेतना और नई स्फूर्ति प्राप्त होने वाली है। इस तरह देखा जाए तो मृत्यु ईश्वरीय योजना का एक करुण विधान है।

दार्शनिक बेकन के शब्दों में, मृत्यु से नया जीवन मिलता है, केवल वहीं से जहाँ मनुष्य मृत्यु की गोद में सोता है, पुनरुत्थान का शुभारंभ होता है। विचारक कोल्टन के शब्दों में मृत्यु उन्हें मुक्त कर देती है, जिन्हें स्वतंत्रता भी मुक्त नहीं कर सकती। यह उनकी प्रभावशाली चिकित्सा है, जिन्हें औषधियाँ ठीक नहीं कर सकतीं। यह उनके लिए आनंद और शांति की विश्रामस्थली है, जिन्हें समय सांत्वना नहीं दे पाता।

मृत्यु मानो एक लंबी छुट्टी पर जाने जैसा है। लोग अपने काम से छुट्टी लेकर किसी सुरम्य क्षेत्र में नदी, सागर के तट पर भ्रमण के लिए निकल पड़ते हैं। मृत्यु के द्वारा भी हम अनंत-जीवन के समुद्र में गोता लगाने, एक सुरम्य प्रदेश की यात्रा करने जाते हैं, जिसकी कल्पना भी हम नहीं कर पाते।

इस तरह मरण एक महायात्रा है, महाप्रस्थान है, महानिद्रा है, जिसे जीवन और जगत् के कार्य-व्यापार से विरत होकर एक लंबी छुट्टी बिताना जैसा मान सकते हैं।

इस तरह मृत्यु जीवन की समाप्ति नहीं, अपितु शरीररूपी साधन को दुरुस्त करके नए उत्साह, नई शक्ति से मंजिल की ओर गतिशील होने की प्रक्रिया है; जिसे प्रकृति माता का स्नेहभरा आमंत्रण कह सकते हैं, जो हमें नया शरीर देने के लिए अपने पास बुलाती है। अतः मृत्यु मनुष्य के लिए हितकारी ही है। जीर्ण-शीर्ण शरीर को लेकर घुट-घुटकर जी रहे जीवन से मुक्ति का सोपान है।

ईश्वर के इस कृपा विधान के लिए हमें कृतज्ञ होना चाहिए कि हमें नया शरीर प्राप्त होने वाला है। फिर शास्त्रों का पारायण भी हमें मृत्यु के प्रति सम्यक दृष्टि रखने के लिए प्रेरित करता है कि आत्मा अजर-अमर और अविनाशी तत्त्व है और शरीर इसका साधनमात्र, जिससे हम चाहें तो परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं, किंतु जब मूल लक्ष्य विस्मृत हो जाता है और शरीर के सुख ही साध्य बन जाते हैं, तो मनुष्य को मृत्यु का भय सताने लगता है। इसके पीछे मनुष्य का अज्ञान ही सक्रिय रहता है। समझदार मनुष्य आध्यात्मिक शास्त्रों से तत्त्वदृष्टि प्राप्त कर इस अज्ञान का निवारण करते हैं।

गीता के अध्याय 2 के 22वें श्लोक में यह तथ्य सुंदर रूप में प्रस्तुत किया गया है कि जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, उसी तरह जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर नए शरीरों को प्राप्त होती है। इस तरह मृत्यु शरीररूपी वस्त्र को बदलने की प्रक्रिया है। जिस प्रकार फटे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र को

उतारकर हम नया वस्त्र धारण करते हैं, उसी तरह मृत्यु भी जीर्ण-शीर्ण, जर्जर, असमर्थ, अशक्त शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करने के समान है।

प्रकृति माता मनुष्य को मृत्यु के रूप में बुलाती हैं, नए वस्त्र पहनाकर फिर भेज देती हैं और यह सिलसिला तब तक चलता रहता है, जब तक हम जीवन-मृत्यु के चक्र से पार नहीं हो जाते। मृत्यु के संदर्भ में कुछ महापुरुषों एवं विचारकों के वक्तव्य सांत्वना देने वाले हैं।

महात्मा गांधी के शब्दों में—मुझे तो बहुत बार ऐसा लगता है कि मृत्यु को जन्म की अपेक्षा अधिक सुंदर होना चाहिए। जन्म के पूर्व माँ के गर्भ में जो यातना भोगनी पड़ती है, उसे छोड़ देता हूँ, पर जन्म लेने के बाद तो सारे जीवन भर यातनाएँ ही भुगतनी पड़ती हैं। उसका तो हमें प्रत्यक्ष अनुभव है। जीवन की पराधीनता हर मनुष्य के लिए एक-सी है।

जीवन यदि अच्छा रहा है तो मृत्यु के बाद पराधीनता जैसी कोई बात नहीं होनी चाहिए। जिनका जीवन शुद्ध और पवित्र होता है, उन्हें तो उस समय बंधनमुक्त ही समझना चाहिए। सदाचार का अभ्यास इसीलिए जीवन में आवश्यक बताया जाता है, ताकि मृत्यु होते ही मनुष्य शाश्वत शांति की स्थिति प्राप्त कर ले।

दार्शनिक सुकरात का कथन था कि मृत्यु के बारे में सदैव प्रसन्न रहो और इसे सत्य मानो कि भले आदमी पर जीवन या मृत्यु के पश्चात कोई बुराई नहीं आ सकती। इसलिए यदि मनुष्य सचेष्ट होकर धर्ममय जीवन जीता है तो मृत्यु से घबराने का कोई कारण नहीं रह जाता। साथ ही मृत्यु से एक कठोर शिक्षा हमें मिलती है कि जितना शीघ्र हो सके परमात्मा को जान लें; क्योंकि उसके जाने बिना पाप और बुराइयाँ साथ नहीं छोड़तीं व तरह-तरह की आकांक्षाएँ पीछे पड़ी रहती हैं।

मनुष्य जीवन का कोई भरोसा नहीं है। मृत्यु किस क्षण आ जाए, इसका कोई ठिकाना नहीं है। मनुष्य के जीवन में पल भर में ही परिस्थितियाँ बदल सकती हैं। कबीरदास जी के शब्दों में—

कबिरा यह जग कुछ नहीं,
खिन खारा खिन मीठ।
काल जै बैठा मंडपै,
आज मसानै दीठ॥

अतः समय रहते शरीर जैसे इस अत्यंत उपयोगी यंत्र का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए जीवन का पूरा-पूरा लाभ लिया जाए और इसे जीवन-शोधन व पारमार्थिक कार्य में नियोजित रखते हुए वह स्थिति प्राप्त कर ली जाए, जहाँ लोक के साथ हमारा परलोक भी सध जाए। ❑

एक व्यक्ति ने एक विद्वान से पूछा—''महाराज! पुनर्जन्म को कैसे सिद्ध किया जा सकता है ?''

ज्ञानी व्यक्ति ने उत्तर दिया—''पुत्र! अपनी बुद्धि का उपयोग पुनर्जन्म को सिद्ध करने में नहीं, निरुद्ध करने में लगाओ। यदि तुम्हारी मेधा इतनी प्रखर हो जाए कि जन्म-जन्मांतरों का, आवागमन का चक्र ही समाप्त हो जाए तो उस बुद्धि का सम्यक उपयोग हो पाया अन्यथा जन्म व्यर्थ गया, ऐसा मानो।''

उस व्यक्ति को जीवन हेतु मार्ग मिल गया।

बुद्धत्व

बुद्धि से बोध की यात्रा ही बुद्धत्व है। बुद्धत्व में बोध की चरमता और परमता होती है, परंतु सामान्य रूप से उन्हें पहचानना कठिन है। बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति किस तरह के होते हैं ? उनकी क्या विशेषताएँ होती हैं, वे औरों से कैसे भिन्न होते या दिखते हैं—इसे जानने की इच्छा बहुतों को होती है। इस बारे में 31 भाषाओं में अनुवादित हो चुकी चर्चित पुस्तक 'गुड क्वेश्चन गुड आन्सर' के लेखक बौद्ध संन्यासी भंते श्रावस्ती धम्मिका ने अपने अनुभव और निरीक्षण के आधार पर जो लिखा है, वह संक्षिप्त में इस प्रकार है—

प्रबुद्ध लोगों में कुछ पुरुष हैं, कुछ महिलाएँ। ऐसे लोगों को हम किसी मठ, आश्रम, जंगल या छोटे कस्बे में पा सकते हैं। यह सच है कि ऐसे लोग बहुत ज्यादा नहीं हैं, लेकिन जितना लोग अनुमान लगाते हैं, उनसे कहीं ज्यादा ऐसे लोग हैं। ऐसा भी नहीं है कि बुद्धत्व या ज्ञानोदय की प्राप्ति अत्यंत कठिन है। दु:खद सत्य यह है कि ज्यादातर लोग स्वयं को अज्ञानता और लालसाओं की कोठरी से बाहर निकालना ही नहीं चाहते।

किसी प्रबुद्ध व्यक्ति को भीड़ में पहचान पाना आसान नहीं है; क्योंकि ऐसा व्यक्ति शांत और स्थिर होता है, लेकिन अवसर आने पर वह अलग नजर आता है। उदाहरण के लिए यदि कहीं विवाद हो या अशांत वातावरण हो, जहाँ हर कोई गुस्से में हो, तब वह प्रेम से परिपूर्ण और शांत नजर आएगा। उसके चेहरे पर शांति और संयम के भाव होंगे। उपद्रव की स्थिति में भी उसकी गति संयमित और स्थिर होगी। ऐसा नहीं कि वह अलग दिखने का कोई प्रयास कर रहा है, बल्कि ऐसा इसलिए है; क्योंकि वह आकांक्षाओं से मुक्त है, जिसने उसे पूर्णत: आत्मस्थ बना दिया है।

हालाँकि आश्चर्यजनक रूप से उसे कोई अन्य विचलित नहीं कर सकता, उसकी शांत स्थिति ही दूसरों में हलचल पैदा करती है। उसके सौम्य और संतुलित शब्द लोगों को प्रतिकूल परिस्थिति में प्रभावित कर एकजुट कर देते हैं। भ्रमित, चिंतित और डरे हुए लोग उससे बात करने के बाद अच्छा महसूस करते हैं।

ऐसे व्यक्ति के हृदय में विद्यमान करुणा के भाव का बोध वन्यजीवों को भी हो जाता है और वे उससे किसी प्रकार से भयभीत नहीं होते। चाहे वह स्थान गाँव, जंगल, पहाड़, घाटी हो, वह सिर्फ इसलिए खूबसूरत हो जाता है क्योंकि वह वहाँ रह रहा है। ऐसा व्यक्ति हमेशा अपना मत प्रकट नहीं करता, वह तर्क नहीं करता और न ही किसी दृष्टिकोण का बचाव करता है।

सच तो यह है कि उसका कोई दृष्टिकोण ही नहीं होता। इसके कारण लोग अक्सर उसे मूढ़ भी समझ लेते हैं। ऐसा व्यक्ति जब व्यग्र नहीं होता, प्रतिकार नहीं करता, तब भी लोग समझते हैं कि उसके साथ कुछ-न-कुछ गड़बड़ है। वह मौन प्रतीत होता है; क्योंकि वह शांत रहना पसंद करता है। लोग समझते हैं कि वह कमजोर है; जबकि वास्तव में वह बहुत शक्तिशाली होता है। उसका चेहरा हमेशा देदीप्यमान और सौम्य रहता है; क्योंकि वह कभी चिंता नहीं करता कि कल क्या हुआ और कल क्या हो सकता है।

उसके कार्य गरिमापूर्ण होते हैं; क्योंकि वह जो कुछ करता है, उसके प्रति स्वाभाविक रूप से चैतन्य रहता है। उसकी आवाज सुनने में प्रिय लगती है और उसके शब्द सौम्य, शिष्ट, स्पष्ट और सटीक होते हैं। वह इस संदर्भ में अद्‌भुत होता है कि उसे शारीरिक सौंदर्य या वाक्‌पटुता से कुछ लेना-देना नहीं होता। उसका सारा सौंदर्य आंतरिक अच्छाई से आता है। उसका कोई घर हो सकता है लेकिन यदि कल उसमें आग लग गई और पूरी तरह नष्ट हो गया तो वह कहीं अन्यत्र चला जाएगा और पहले जैसी सहजता से ही वहाँ रहने लगेगा।

वह कहीं भी सरलता से रह सकता है। जो कुछ उसके पास है या उसे मिलता है, चाहे वह कितना भी हो, उसे वह पर्याप्त लगता है, उसमें वह संतुष्ट रहता है। यह सच है कि हर किसी की तरह वह भी जीवन की मूलभूत जरूरतें ढूँढ़ता है, लेकिन वह उतना ही ग्रहण करता है, जितनी उसकी जरूरत होती है।

उसकी जरूरतें भी बहुत कम होती हैं। उसका जीवन शांत, निर्मल और सरल होता है और जो कुछ वह पाता है, उससे वह संतुष्ट रहता है। उसका असली पोषण आनंद होता है, सत्य उसका वास्तविक पेय होता है, उसका वास्तविक घर आत्मजागरण होता है। सामान्य लोगों का जीवन जहाँ बरसाती नदी की तरह कोलाहलपूर्ण होता है तो वहीं प्रबुद्ध व्यक्ति समुद्र की गहराई जैसा शांत होता है।

वह शांति पसंद करता है और शांति की प्रशंसा करता है। ऐसा नहीं है कि वह कभी अपना मुँह नहीं खोलता। वह उन्हीं के साथ अध्यात्म या धर्म की बात करता है, जो इसमें दिलचस्पी रखते हैं। हालाँकि वह कभी उपदेश नहीं देता और न कभी तर्क-वितर्क या वाद-विवाद में हिस्सा लेता है; क्योंकि जितना वह वास्तव में जानता है, उसके परे की बात वह नहीं करता। जो कुछ वह कहता है, वह प्रामाणिकता से परिपूर्ण होता है, जिसके सामने विशेषज्ञ भी नहीं ठहरते।

प्रबुद्ध व्यक्ति का मन-मस्तिष्क विचारों से भरा नहीं होता, न ही वह निष्क्रिय होता है। जब जरूरत होती है, वह विचार करता है, जब जरूरत नहीं होती, तब मन को वह निर्विचार रखता है। ऐसे व्यक्ति के लिए विचार उपकरण की तरह हैं न कि समस्या की भाँति। यद्यपि उसकी भी स्मृतियाँ होती हैं, भावनाएँ होती हैं, लेकिन वह उनसे विचलित नहीं होता।

उसके लिए ये सब माया के आवरण होते हैं। वह विचारों को उठते और गुजरते हुए देखता है। उसका मन साफ आकाश की तरह होता है। उसमें बादल आते-जाते हैं, लेकिन वह हमेशा अपरिवर्तित रहता है। हालाँकि प्रबुद्ध व्यक्ति हर प्रकार से पवित्र होता है, लेकिन वह स्वयं को न तो किसी से श्रेष्ठ समझता है, न ही तुच्छ। दूसरे लोग जैसे होते हैं— उन पर उसका कोई मंतव्य नहीं होता और न उनसे उसकी कोई तुलना होती है।

वह न किसी के पक्ष में होता है और न विरुद्ध। ऐसा व्यक्ति चीजों को अच्छे और बुरे, पवित्र और अपवित्र, सफल और असफल आदि के परिप्रेक्ष्य में नहीं देखता; क्योंकि वह इनसे ऊपर उठ चुका होता है। वह द्वैत की दुनिया को समझ कर उससे पार जा चुका होता है। वह संसार और निर्वाण के विचार से भी पार जा चुका होता है। हर चीज के पार होने से वह चीज से मुक्त होता है। न कोई आकांक्षा, न कोई भय, न कोई चिंता, न कोई अवधारणा उसे आक्रांत करते हैं।

कुछ समय पहले तक प्रबुद्ध व्यक्ति को भी दूसरों की तरह भ्रमित, दुःखी समझा जाता था। तब

ऐसा परिवर्तन कैसे आया ? ऐसा इसलिए; क्योंकि उसने अपने तमाम दु:खों को अपने से बाहर देखना छोड़ भीतर देखना शुरू कर दिया। उसने समझा कि जिन चीजों—शरीर, भावनाओं, विचार, समस्याओं, धारणाओं से वह स्वयं की पहचान करता है—वे सब उसकी नहीं हैं।

उसने उन्हें छोड़ दिया होता है। जिन भ्रामक चीजों को वह वास्तविक समझ रहा था, उसकी पहचान उसने कर ली और अब वह हर क्षण आनंद में है। ऐसे प्रबुद्ध व्यक्ति को किसी श्रेणी में वर्गीकृत करना कठिन है, इसलिए लोग उसे संत, अरिहंत, योगी इत्यादि कहते हैं, लेकिन वह इन उपाधियों पर हँसता है; क्योंकि वह स्वयं को कुछ भी नहीं समझता-मानता है।

चूँकि वह अपना कार्य पूर्ण कर चुका है और उसके पास करने के लिए और कुछ नहीं है, इसलिए प्रबुद्ध व्यक्ति ज्यादातर समय शांतचित्त होकर अपने काम में लीन रहता है। इसी तरह वह तब तक अपना जीवन जीता है जब तक कि अंतत: मृत्यु उसका आलिंगन न कर ले। बिना किसी भय और पश्चात्ताप के वह मृत्यु का स्वागत करता है।

मृत्यु के बाद प्रबुद्ध व्यक्ति का क्या होता है, इस पर विद्वान सदियों से बहस करते आए हैं। सच तो यह है कि जिस तरह आकाश में मुक्त उड़ते पंछी के पदचिह्नों को कोई नहीं जान सकता, उसी तरह प्रबुद्ध व्यक्ति मृत्यु के बाद कहाँ जाता है, कोई जान नहीं सकता।

जीवन की तरह मृत्यु में भी पदचिह्नविहीन प्रबुद्ध व्यक्ति अपना कोई निशान नहीं छोड़ता। वह जैसा निर्लेप होकर आता है, उसी तरह निर्दोष होकर चला जाता है। उसके सब अपने हैं और कोई भी अपना नहीं है; क्योंकि वह सदा आत्मस्थ है। ❑

संतप्रवर कह रहे थे। एक मुरगा व कबूतर उनके पास अपनी-अपनी व्यथा लेकर पहुँचे। पहले मुरगे ने अपनी व्यथा व्यक्त की व बोला—"महाराज! भगवान ने हमारे साथ अन्याय किया है। मुझे इतना बदसूरत बनाया है, इसलिए लोग मुझे खाने के पीछे पड़े रहते हैं।"

कबूतर बोला—"महाराज! मुझे भी भगवान ने बहुत-सी सुविधाएँ नहीं दीं। मोर, तोते को इतना सुंदर बनाया उन्हें लोग स्वयं भोजन कराते हैं, जबकि मुझे इसके लिए भाग-दौड़ करनी पड़ती है।"

संत मुरगे से बोले—"पुत्र! तुम्हें भगवान ने बदसूरत नहीं बनाया, बल्कि इतनी सुंदर कलगी लगा कर दी है। इसीलिए तुम्हें ताम्रचूड़ कहा जाता है।" फिर वे कबूतर की ओर देखते हुए बोले—"पुत्र! तुम्हें विधाता ने पंख दिए हैं, तुम चाहो तो अनंत आकाश में भ्रमण कर सकते हो, परंतु यदि तुम एक ही स्थान पर रुके रहो तो जीवन में विकास की संभावनाओं को अंगीकार कैसे कर सकोगे।"

दोनों की समझ में अपनी भूलें आ गईं।

बुद्धिमान जीव-जंतुओं का रोचक संसार

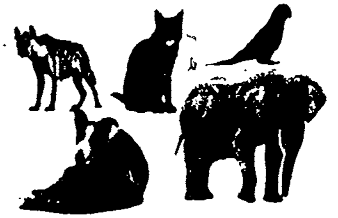

मनुष्य स्वयं को बुद्धिमान प्राणी मानता है और दूसरे जीव-जंतुओं को हेय दृष्टि से देखता है, लेकिन परमपिता परमेश्वर के लिए अपनी सभी संतानें प्यारी हैं और सभी को उसने कुछ विशेषताओं के साथ भेजा है; जिनकी बुद्धिमत्ता, होशियारी, कौशल व समझदारी देखकर चकित होना पड़ता है। प्रस्तुत हैं कुछ ऐसे ही उदाहरण, जिनसे इनसान बहुत कुछ सीख सकता है।

चिंपाजी इनसान जैसे दिखने वाले सबसे बुद्धिमान प्राणियों में से एक है। इसका डीएनए 98.5 प्रतिशत मनुष्य के समान पाया गया है। मुख्य रूप से चिंपाजी मध्य अफ्रीका के ऊष्णकटिबंधीय वर्षावन क्षेत्र में पाए जाते हैं।

चिंपाजी के मस्तिष्क की संरचना मानवीय मस्तिष्क के समान होती है। अत: चिंपाजी जिज्ञासु प्रकृति का जीव है तथा यह अवलोकन एवं अनुकरण से सीखता है। इसके मस्तिष्क में दीर्घकालीन स्मृतियाँ होती हैं और यह बाएँ या दाएँ हाथ से काम कर सकता है।

सन् 2014 की नेचर जर्नल में प्रकाशित शोध के अनुसार, मस्तिष्क और स्मृति खेलों में चिंपाजी वास्तव में मनुष्यों से बेहतर प्रदर्शन करते हैं। वे सांकेतिक भाषा (साइन लैंग्वेज) के माध्यम से सीखने व संवाद करने में अच्छे होते हैं। शोधकर्त्ताओं ने चिंपाजी को सांकेतिक भाषा का उपयोग करना भी सिखाया है। वाशो संकेत सीखने वाली पहली गैर-मानव प्राइमेट रही है, जिसने 2007 में मृत्यु से पहले 350 संकेत सीखे थे।

मालूम हो कि चिंपाजी ही एक ऐसा प्राणी है, जो मुस्कराता है। ये डंडियों के सहारे दीमकों का शिकार करते हैं, कठोर छिलके वाले फलों, मेवों को पत्थरों से तोड़ते हैं, शिकार के लिए भालों का भी उपयोग करते हैं। समस्याओं का समाधान व नकल करने में ये अव्वल हैं। साथ ही इनकी सूँघने व समझने की क्षमता गजब की होती है।

पशुओं में चिंपाजी के अतिरिक्त हाथी और कुत्ता भी बुद्धिमान होते हैं। हाथी बुद्धिमता का प्रतीक माना जाता है और अपनी स्मरणशक्ति तथा बुद्धिमानी और समस्या समाधान कौशल के लिए यह प्रसिद्ध है। इसकी बुद्धिमानी डॉल्फिन तथा वनमानुषों के बराबर मानी जाती है।

इन्हें टहनियों को तोड़कर मच्छर व मक्खियों को भगाने से लेकर स्वयं को खुजलाते देखा गया है। अपनी स्मरणशक्ति के बल पर ही ये जलस्रोतों को तथा बिछड़े परिजनों को याद रखते हैं। हाथियों का अपने मृतकों का शोक मनाने का ढंग बहुत कुछ इनसानों जैसा होता है।

कुत्ता भी सबसे बुद्धिमान जंतुओं में आता है, जिसे मनुष्य का सबसे अच्छा मित्र मानां जाता है। कुत्ते में मानवीय भावों को समझने की अद्भुत क्षमता होती है। यदि प्रशिक्षण दिया जाए तो यह बुद्धिमत्ता में शीर्षस्थ है। इसके सूँघने और समझने की क्षमता गजब की होती है। साथ ही कुत्ते को स्वामिभक्ति के लिए भी जाना जाता है और कुत्ता अपने मालिक के लिए कुछ भी कर सकता है।

कुत्ता जिन्हें प्यार करता है, उन लोगों को कभी नहीं भूलता है। आश्चर्य नहीं कि कुत्तों को प्रशिक्षण देकर सेना में भरती किया जाता है। भेड़िये व लोमड़ी की होशियारी के किस्से भी ग्रंथों में भरे पड़े हैं। हालाँकि ये मानव से थोड़ा बचकर दूर रहते हैं, लेकिन अपने समूह में इनका व्यवहार दर्शनीय रहता है।

पेंगुइन जैसे उभयचर प्राणी का मस्तमौला अंदाज भी सबको आकर्षित करता है। यह भी पर्याप्त बुद्धिमान होता है, जो स्वयं को दर्पण में पहचान सकता है। पुकारने पर ये दौड़कर चले आते हैं और इन्हें किसी भी कार्य के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है।

चींटी जैसा दिखने में नन्हा-सा प्राणी भी बुद्धिमता में बहुत आगे है। इसमें कई ऐसे लक्षण देखने को मिलते हैं, जो इसकी बुद्धिमानी को सूचित करते हैं। ये भूमि के भीतर अपने सुनियोजित भवन का निर्माण करती हैं और इनमें भूकंप व अन्य प्राकृतिक आपदाओं के पूर्व अनुमान की क्षमता होती है। ये अपने रास्ते को पहचान जाती हैं और बातें करते-करते अपने लक्ष्य की ओर पहुँच जाती हैं।

वानर परिवार का भारी भरकम जीव गोरिल्ला भी अपनी सज्जनता के साथ बुद्धिमता के लिए जाना जाता है। गोरिल्ला एक शाकाहारी प्राणी है, जो मनुष्य से 6 से 15 गुना अधिक ताकतवर है। इसका वजन 200 किलो तक होता है और यह 35 से 40 वर्ष जीता है।

इसकी ऊँचाई दो पैरों पर खड़े होने पर छह फीट तक पहुँच सकती है। इसका प्राकृतिक आवास उप-सहारा अफ्रीका में ऊष्णकटिबंधीय या उपोष्णकटिबंधीय जंगल हैं। सबसे बड़ा प्राइमेट गोरिल्ला उपकरणों का उपयोग कर सकता है और उच्चस्तरीय भावनात्मक क्षमता लिए होता है। पानी को पार करते हुए यह डंडे के सहारे इसकी गहराई नापता है और अपने लिए आरामदायक घर तैयार करता है। यह चतुर प्राणी विविध प्रकार के भावों को दरसाता है।

सागर के तटों व नदियों में रहने वाला स्तनपायी जीव डॉल्फिन भी अपनी बुद्धिमत्ता, मिलनसारिता और चपलता के कारण सभी का ध्यान आकर्षित करता है और यह इनसान का एक प्रिय साथी-सहचर है।

डॉल्फिनों में मस्तिष्क और शरीर का अनुपात मनुष्यों जैसा होता है। शोध के अनुसार डॉल्फिन मनुष्य से भी कहीं अधिक बुद्धिमान और संवेदनशील हैं। ये अमूर्त अवधारणाओं को समझते हैं, औजारों का उपयोग करते हैं और प्रस्तुत समस्याओं को हल कर सकते हैं तथा परिष्कृत भावनाओं को प्रदर्शित करते हैं। आश्चर्य नहीं कि इन्हें जल में विचरण करने वाला सबसे भावनात्मक जीव कहा जाता है।

डॉल्फिन जिस व्यक्ति से मित्रता कर ले तो उसे जीवनपर्यंत याद रखता है। इसके अतिरिक्त डॉल्फिन 20 वर्षों तक अपने साथी के साथ हुए संवाद को याद रख सकता है। कुत्तों की तरह डॉल्फिन मनुष्य से आदेश सीख सकते हैं। अध्ययन से पता चला है कि बॉटलनोज डॉल्फिन स्वयं को दर्पण में पहचान सकते हैं और मेटाकॉग्निशन में सक्षम होते हैं।

अमेरिकी नौसेना में डॉल्फिनों को घाटों, बंदरगाहों और जहाज के निषिद्ध क्षेत्रों में घुसपैठियों का पता लगाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। डॉल्फिन समूह की ओर्का प्रजाति अपनी खूँखार प्रवृत्ति के साथ अपनी बुद्धिमता के लिए जानी जाती है और पूरी रणनीति बनाकर समूह में शिकार करती है, जिसे देखकर इसके रणनीतिक कौशल का लोहा मानना पड़ता है।

समुद्र में रहने वाला ऑक्टोपस भी एक रोचक प्राणी है, जो परिस्थिति व खतरे को देखते हुए,

तदनुरूप अपना रंग, रूप व आकार बदलने में माहिर है। पलक झपकते इसके स्वरूप को बदलते देखा जा सकता है। यह जार के ढक्कन खोलने से लेकर सँकरे स्थल से पार होने और मछलीघर से बाहर निकलने की बुद्धिमत्ता रखता है।

इनका स्नायविक संस्थान उच्चस्तरीय रूप में विकसित होता है, जो इन्हें नई चुनौतियों के अनुरूप ढालने की क्षमता देता है।

पक्षियों में कौआ भी अपनी होशियारी व चतुराई के लिए जाना जाता है। कौआ इतना जागरूक होता है कि वह अपने आस-पास के परिवेश की सही गणना कर सकता है। किसी भी समस्या को कौए पल भर में दूर कर लेते हैं। वह किसी भी औजार को अपने लिए मनुष्य की तुलना में काफी बेहतरी से प्रयोग कर सकता है। इनका संवाद विस्तृत बोलियों में होता है और ये एकदूसरे के साथ खेल भी खेलते हैं। इनकी सामाजिक बुद्धिमत्ता उच्चस्तरीय होती है और ये मानवीय चेहरे को पहचानने व याद रखने में सक्षम होते हैं।

तोते को सदैव से ही मनुष्य की नकल करने के लिए जाना जाता रहा है। इसको कुछ ही दिनों में मनुष्य की भाषा सिखाई जा सकती है; जबकि प्राचीनकाल में बाज और कबूतरों से संदेश को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का काम लिया जाता था। फिलिपींस में पाया जाने वाला बोया पक्षी अपने घोंसले के चारों ओर प्रकाश के लिए जुगनुओं को भरकर लटका देता है, जो कार्य कोई बुद्धिमान पक्षी ही कर सकता है।

सूअर को देखकर इसके मंदबुद्धि व गंदगी पसंद प्राणी होने का एहसास होता है, लेकिन इसका मस्तिष्क बुद्धिसंपन्न होता है। यह एक सर्वाहारी जीव है। बचपन से कई तरह की समस्याओं से निपटने के कारण यह स्वयं को बचाने की 50 से अधिक तकनीकें जानता है।

सूअर जहाँ रहते हैं, वहाँ वे अपने घर का रास्ता कभी नहीं भूलते। ये भावनाओं को समझते हैं और सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। वे इनसानी बच्चों की तरह बुद्धिमान होते हैं और तीन वर्ष जितने बड़े बच्चे के समान बुद्धि रखते हैं।

बिल्ली पालतू जानवरों में प्रमुख स्थान रखती है, इसकी सुनने व सूँघने की शक्ति प्रखर होती है और यह कम रोशनी में, यहाँ तक कि रात में भी देख सकती है। इसके प्रतिसंवेग आश्चर्यचकित करने वाले हैं। आश्चर्य नहीं कि इसी आधार पर बिल्ली साँप के दंश तक से बखूबी अपना बचाव कर लेती है। यह आवश्यकताओं को अपनी वाणी और दैहिक भाषा से व्यक्त करती है और कठिन समस्याओं का हल निकालने में सक्षम होती है।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।

अर्थात वह जो उस आकाश को, जो अपरिवर्तनीय व अविनाशी है—उसको नहीं जानता तो वह वेद जानकर क्या करेगा?

गिलहरी जैसा नन्हा-सा जीव भी अपनी चतुराई, स्फूर्ति व समझ के लिए माना जाता है। यह सरदी के लिए अपना आहार संचित करने में माहिर है। आहार संग्रह में यह बड़ी ही चतुराई से काम लेती है। यह एक जगह पर सामान छिपाने का नाटक करती है और वास्तव में उस सामान को दूसरी जगह छिपाती है। अपने शत्रुओं को बेवकूफ बनाने का इसका अपना तरीका होता है, जो इसकी चतुराई को दरसाता है।

इस तरह यह कुछ जीव-जंतुओं की बुद्धिमानी से भरे संसार की एक झलक है, जिसका विस्तार अनंत है। यह सोचने पर मजबूर करता है कि ईश्वर ने सभी प्राणियों को अपने जीवन निर्वाह व संरक्षण के लिए कुछ विशिष्ट क्षमताएँ दे रखी हैं और वे इनसान से किसी भी रूप में कम नहीं। ❑

जीवन शोधन का राजमार्ग है—त्याग

त्याग—प्राप्ति और प्रगति का नवचरण है। त्याग ही जीवन है। त्याग जीवन का सारांश है। इसके बिना जीवन की परिकल्पना संभव नहीं है। त्याग जीवन का एक आवश्यक धर्म है। यह जीवनशोधन का राजमार्ग है। प्राप्ति और प्रगति का नवचरण है—त्याग। यह अशुभ के स्थान पर शुभ की प्रतिष्ठा का नियम है। एक को छोड़ने पर ही दूसरे की प्राप्ति संभव होती है। रखा हुआ कदम उठाकर ही पथ पर आगे नवचरण धरा जा सकता है। पेट में अवशिष्ट तत्त्व का (मल का) त्याग करने पर ही भोजन की रुचि होती है।

शुद्ध वायु ग्रहण करने के लिए फेफड़ों में स्थित अशुद्ध वायु को छोड़ना पड़ता है। संग्रह करने से, पदार्थों को चिपकाए रहने से तो जीवन गति में विषमता पैदा हो जाती है। रुका हुआ पानी सड़ने लगता है।

पेट यदि खाए हुए पदार्थों को अपने अंदर ही संग्रह करता रहे तो अनेकों बीमारियाँ पैदा होकर शरीर में भयानक उपद्रव पैदा कर देंगी। हृदय रक्त की वितरण-व्यवस्था में संग्रह-बुद्धि से काम ले तो शरीर की चेतनता ही नष्ट हो जाएगी।

त्याग बिना विकास, प्रगति, उन्नति का पथ प्रशस्त नहीं होता। जब तक हम किन्हीं पदार्थों, परिस्थितियों, यहाँ तक कि विचारों, भावनाओं में बँधे पड़े रहते हैं, तब तक अन्य विषयों की ओर हमारी गति ही नहीं होगी। इसलिए किसी वस्तु या विषय विशेष से बँधना, उसमें लिप्त रहना सर्वथा त्याज्य है। जो कुछ हमारे पास है, हम जो कुछ भी जानते हैं, उसे हम अपनी उन्नति का आधार बना सकते हैं। जिस सीढ़ी पर आप खड़े हैं, उसका सहारा लेकर ऊपर उठ सकते हैं, लेकिन अंततः सीढ़ी हमें छोड़नी ही पड़ेगी।

यह असंभव है कि हम उस पर खड़े भी रहें और ऊपर भी पहुँच जाएँ। जीवन की पगडंडी भी बड़ी लंबी है। संसार का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। आगे बढ़ने के लिए, प्राप्त करने के लिए हमें नित्य त्याग करना ही पड़ेगा। यहाँ कोई भी तो ऐसा धाम नहीं है, जहाँ पहुँचकर कह सकें कि बस हमारी यात्रा पूरी हो गई, अब यहाँ से हटना नहीं है। जब तक जीवन है, संसार है, तब तक हमें छोड़ना पड़ेगा, त्याग करते रहना होगा। इसलिए त्याग कीजिए 'मैं' और 'मेरेपन' का, ताकि हम 'परम सत्ता' की अनुभूति कर सकें।

जब तक 'मैं' है, हम परमात्मा की विराट सत्ता की अनुभूति प्राप्त नहीं कर सकेंगे। 'मेरेपन' के कारण वस्तुओं, पदार्थों, विषयों की सीमा से बाहर नहीं निकल सकेंगे। ऐसी स्थिति में हम विश्वचक्र की गति से पिछड़ जाएँगे। चूँकि सारा संसार ही त्याग धर्म पर चल रहा है, अतः संग्रह और रोके रखने की वृत्ति हमारे लिए जीवन में संघर्ष पैदा कर देगी।

यहाँ का धर्म है कि विश्व जीवन को गति देने के लिए कुछ-न-कुछ त्याग किया जाए। यदि आप चाहेंगे कि 'मैं नहीं दूँगा', 'मैं नहीं छोड़ूँगा' तो ऐसी स्थिति में विश्व-प्रकृति के विरोध का सामना करना पड़ेगा और तब आपको विवश होकर एक पराजित योद्धा की तरह छोड़ना पड़ेगा। फिर क्यों न स्वेच्छा से त्याग करके विश्वक्रम में सहयोग दिया जाए?

इससे दो लाभ होंगे—एक स्वधर्म पालन करने का संतोष, दूसरे हमारा जीवन एकाकी, संकीर्ण न रह कर विश्वजीवन से संयुक्त हो जाएगा। हम जीवन की उच्च भूमिकाओं में प्रवेश पा सकेंगे।

चूँकि त्याग एक को हटाकर दूसरे की प्रतिष्ठा का अवसर देता है, इसलिए मन, कर्म, वचन से अशुभ का त्याग कीजिए। जिस तरह द्वार की किवाड़ों को खोलते ही सूर्य का प्रकाश सहज भवन को प्रकाशित कर देता है, उसी तरह जीवन से अशुद्ध तत्त्वों को निकाल देने पर शुभ का उदय स्वतः हो जाता है, बुराइयों के छूटते ही अच्छाइयाँ स्वतः पैदा हो जाती हैं।

क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, ममता, लोभ आदि बुराइयों के छूटने पर दया, प्रेम, करुणा, श्रद्धा, तितिक्षा, शम, दम आदि सात्त्विक तत्त्वों का उदय होने लगता है। विषय-वासना और उनसे प्रेरित भोगों का त्याग करना आवश्यक है, क्योंकि इनके रहते हुए जीवन में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा संभव नहीं होती।

इनके रहने से मनुष्य की शक्तियाँ अस्त-व्यस्त एवं क्षीण हो जाती हैं। इनमें लिप्त रहने से, आध्यात्मिक एवं भौतिक, किसी भी क्षेत्र में ऐसी सफलता नहीं मिलती, जिससे संतोष मिल सके। विषय-भोगों का चिंतन जीवन में कई तरह की विषमताएँ पैदा कर देता है।

गीता (2/62) का वचन है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥

अर्थात विषयों का चिंतन करने से उनमें आसक्ति पैदा हो जाती है। विषयों की आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है और कामना यदि पूर्ण न हो तो क्रोध की उत्पत्ति होती है। इस तरह विषयों के चिंतन मात्र से ही अनेकानेक मानसिक जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती हैं और मनुष्य अपने श्रेय पथ से विचलित हो जाता है।

लिप्सा चाहे विषय-भोगों की हो या धन-दौलत की या पद-प्रतिष्ठा की, उसे मानसिक और व्यावहारिक क्षेत्र से सर्वथा दूर करने का प्रयत्न किया जाए। मन में रहने वाली उस इच्छा एवं रुचि तक का भी त्याग न किया जाए, जिनसे विषय-भोगों की तृष्णा बढ़ती हो, जिनसे लोभ, मोह, अभिमान आदि को पोषण मिलता हो।

स्वाद में आसक्ति उचित नहीं है। ऐसे भोजन का त्याग करना चाहिए, जिससे स्वाद में आसक्ति बढ़ती हो, जिससे आलस्य-प्रमाद बढ़ता हो, जो तामसी, बासी, गंदा और कुसंस्कारित हो एवं जो ईमानदारीपूर्वक कमाई से प्राप्त नहीं हुआ हो। शुद्ध, सात्त्विक, ताजा, हलका, पौष्टिक और परिश्रम की कमाई से प्राप्त हुआ भोजन ही शरीर को स्वस्थ, ताजा रखता है।

जीवन में वाणी का संयम भी आवश्यक है। वाणी से असत्य वचन, चापलूसी, परनिंदा, कटुभाषण, व्यर्थ वार्त्तालाप का त्याग करना चाहिए, क्योंकि ये अशुभ और अनैतिक हैं। इनसे जीवन में कलह, पश्चात्ताप, लड़ाई-झगड़े, अशांति पैदा हो सकते हैं। परस्पर के संबंध खराब हो सकते हैं। अतः ऐसी वाणी का प्रयोग हमें नहीं करना चाहिए।

उन सभी दृश्यों तथा प्रसंगों से भी दूर रहना चाहिए, जिनसे दूषित मनोभावों, वासनाओं को पोषण मिलता हो। मनुष्य जो कुछ भी देखता है, उसकी प्रतिक्रिया मन पर होती है, वह प्रबल हो उठती है और मनुष्य को वैसा ही करने की प्रेरणा देती है। किसी भी स्थिति में बुरे काम करना, बुरा सोचना और बुरा चाहना त्याज्य है। इतना ही नहीं, बुरा देखने और सुनने से दूर रहना भी अच्छा है।

इस तरह जीवन के सभी क्षेत्रों से अशुभ, अपवित्र का त्याग करना चाहिए, जिससे शुभ का उदय हो सके। कई बार हम लोग किन्हीं गलत प्रेरणा, उत्तेजनाओं से उत्तेजित मनोभावों में त्याग का विकृत रूप अपना लेते हैं तथा साधन-वस्तु अथवा अपनी जिम्मेदारी और कर्त्तव्यों का त्याग करते हैं। कोई परिवार छोड़ देते हैं, तो कोई वस्त्र या वस्तु विशेष का त्याग करते हैं, लेकिन इनसे तो त्याग की आवश्यकता पूर्ण नहीं होती और न ही उसकी परिभाषा सार्थक होती है। त्याग का मूलाधार मनुष्य की मन:स्थिति है।

इच्छा और कामनाओं का त्याग, अहंकार, स्पृहा, मोह, मनोभावों का त्याग ही सच्चा त्याग है। जब तक मनुष्य इन दूषित मनोभावों का त्याग नहीं करता, तब तक उसे शांति और संतोष की प्राप्ति नहीं होती, चाहे वह बाहरी त्याग के कितने ही प्रयत्न क्यों न करता रहे। गीताकार ने इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति॥

अर्थात सभी कामनाओं को छोड़कर, सब ओर से निस्पृह, ममतारहित, अहंकार का त्याग करने वाला शांति को प्राप्त करता है। हम संपत्ति का त्याग करते हैं, किंतु मन में स्थित लोभवृत्ति को नहीं छोड़ते। घर-परिवार का त्याग करते हैं, किंतु ममता, मोह का त्याग नहीं करते।

स्थान, पद, अधिकार छोड़ देते हैं, किंतु अहंकार नहीं छोड़ते। इसी कारण हम सदैव अशांत और असंतुष्ट बने रहते हैं। त्याग यदि सच्चे मन से किया होता है तो उससे शांति, आत्मसुख की प्राप्ति होती है, किंतु हम आवेश में आकर या दिखावे के लिए बाहरी त्याग करते हैं। इनको छोड़े बिना कहीं भी एकांत, वन, गिरि-गुफाओं में ही क्यों न रहा जाए, शांति नहीं मिलती।

इस तरह अपनी दूषित कामनाओं, अवांछनीय इच्छाओं, दुष्ट वासनाओं तथा दूषित मनोभावों का त्याग न करके जो प्रवृत्तियों का बलात् त्याग करता है, गीताकार ने उसे दंभी कहा है। ऐसे व्यक्ति अपने आदर्श से जल्दी ही विचलित हो जाते हैं।

जिन्होंने शरीर-क्रिया का त्याग किया और मन से विषयों का चिंतन करते हैं, ऐसे लोग पथभ्रष्ट हो जाते हैं। योगभ्रष्ट होने वाले साधक इसी श्रेणी में आते हैं। अतः हमें त्याग का समुचित मर्म समझना चाहिए और मन से त्याग की वृत्ति अपनानी चाहिए। ❑

पत्रिका रजिस्टर्ड मँगाएँ

डाक-अव्यवस्था के कारण प्रायः अखण्ड ज्योति न मिलने की शिकायत बनी रहती है। अतः सदस्यों की सुविधा के लिए रु. 240/—वार्षिक (20/—प्रतिमाह) शुल्क अतिरिक्त भेजने पर रजिस्टर्ड डाक से भेजने की व्यवस्था जनवरी—2025 से प्रारंभ की जा रही है।

जो सदस्य इस सुविधा का लाभ उठाना चाहें, वे अपना पूरा नाम, पता, सदस्यता क्रमांक, मोबाइल नंबर सहित रु. 240/—(रु. 20/—मासिक) अतिरिक्त भेजकर सूचना अवश्य दें। यह सुविधा वार्षिक सदस्य, बीसवर्षीय सदस्य एवं 2 से 14 तक इकट्ठी पत्रिका मँगाने वालों के लिए उपलब्ध है।

2 से 14 तक पत्रिका मँगाने वालों को भी मात्र रु. 240/—(20/—प्रतिमाह) ही देना होगा।

क्या बुढ़ापा कष्टकर ही होता है?

हमने बहुत-से ऐसे लोगों को देखा होगा, जो रुग्ण स्थिति में बुढ़ापे के दिन पूरे करते हैं। उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन खराब होता जाता है तथा मृत्यु की घड़ी शीघ्र ही आ जाती है। हमें जो शरीर मिला है, यह एक अत्यंत ही सुसज्जित यंत्र है। इसका दुरुपयोग न किया जाए तो यह आयु, बल, विवेक, प्रतिष्ठा सब कुछ देता है, परंतु इसे ही यदि कुप्रभावों के वशीभूत कर दिया जाए तो पीड़ा का कारण भी बनता है। जो थोड़े-से रोग के लिए ढेर सारी दवाइयाँ खाते हैं तथा अपनी नैसर्गिक क्षमता पर विश्वास नहीं करते, उन्हें ही यह स्थिति देखनी पड़ती है।

हमें ईश्वर के दिए इस उपहार को यथावत् रखते हुए खान-पान, रहन-सहन में सादगी का समावेश करना चाहिए। जब हम ऐसा कर लेंगे तो थोड़ी-सी समस्या कभी बड़ा रूप धारण नहीं कर पाएगी।

जिनका भी शरीर बरबाद हुआ है वे उसे कृत्रिमता से ओढ़े रहे, उन्होंने यह देखा ही नहीं कि इसमें यह विशेषता है कि यह सुख और सबलता का जनक है। जितनी भी बीमारियाँ हैं वो बौनी पड़ जाएँगी यदि इनका सार्थक उपयोग हो सके तो। प्राणशक्ति की अधिकता ही इसे हर परिस्थिति में उन्नत रखने में समर्थ है, परंतु यह हो कैसे? न हमारा मन इसकी आज्ञा देता है, न हमारी इंद्रियाँ सही विषय को चुन पाती हैं। हमारी आत्मा पर लगे कुसंस्कार ही वास्तव में हटाने योग्य हैं।

जो ऐसा कर लेता है, उसे स्वत: ही अपने संपूर्ण कलेवर में एक ही आभा के दर्शन होते हैं। अंतिम समय तक भी बिना कष्ट-पीड़ा से आक्लांत हुए निश्चिंत जीवन बिताया जा सकता है। जैसा हमें बनाया गया है उस रूप में यह संभव है, बशर्ते हम विपरीत आचरण न करें, प्रकृति से ऊँचा अपने चाल-चलन को न मानें।

एक परिपक्व मनुष्य सहज रूप से अपनी यात्रा को पूरा कर पाता है, वहीं जिसने अज्ञानता का परिचय दिया उसे भारभूत होना पड़ता है। हम वृद्धावस्था से डरें नहीं। यह सामान्य जीवनक्रम है और इसे उपयुक्त दिशाक्रम मिल सके तो किसी को भी यातनापूर्वक न रहना पड़ेगा।

दुनिया का सम्मान और सहयोग उनके लिए सुरक्षित है, जो देते बहुत हैं, पर बदले में कम पाने पर भी काम चला लेते हैं। कम देना और बहुत पाना तो प्रवंचकों, पाखंडियों और अत्याचारियों के ही गले उतरता है। वस्तुतः इस प्रत्यक्ष संसार और अप्रत्यक्ष परलोक का एक ही शाश्वत क्रम है कि पहले दो, बाद में पाओ।

—परमपूज्य गुरुदेव

भारतीय चिकित्सा विज्ञान कहता है कि हममें भीतर से ठीक होने का गुण-कौशल है, उसे उजागर करें। ऐसा हो जाने पर ही संपूर्ण रूप से निवृत्ति हो पाती है। असाध्य कुछ भी नहीं एवं जो महत्त्वपूर्ण है, उसे किया जाना जरूरी है। मनुष्य बिना किसी तनाव के तथा ऊहापोह से परे संतुलित रहता हुआ इस अनमोल सीख का वरण कर सकता है कि वह पूरे विधि-विधान के साथ यहाँ भेजा गया है तथा उसके लिए कोई कमी नहीं छोड़ी गई है। ❑

उत्तरकाशी से गंगोत्तरी धाम

हिमालय यात्रा तो कितने लोगों ने की होगी, जिनमें यायावर, साधक, योगी से लेकर प्रकृतिप्रेमी घुमक्कड़ एवं पर्वतारोही शामिल हैं और इनमें से कुछ के यात्रा-वृत्तांत भी उपलब्ध हैं, जो हिमालय के बारे में रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक जानकारियाँ उपलब्ध करवाते हैं, लेकिन इनके बीच परमपूज्य गुरुदेव की हिमालय यात्राएँ स्वयं में विशिष्ट हैं। हिमालय यात्राओं का जितना रोचक, प्रेरक एवं सूक्ष्म वर्णन पूज्य गुरुदेव करते हैं, वह स्वयं में अद्वितीय, अनुपम एवं बेजोड़ है।

पूज्यवर ने घोषित रूप से 4 बार हिमालय की यात्राएँ कीं। अपनी हिमालय यात्राओं की पृष्ठभूमि बताते हुए वे लिखते हैं—अपने पहले दर्शन में ही चौबीस गायत्री महापुरश्चरण पूरे होने एवं चार बार एक-एक वर्ष के लिए हिमालय बुलाने की बात गुरुदेव (दादागुरु) ने कही।

हिमालय यात्रा के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए पूज्यवर लिखते हैं, हमें हिमालय पर बार-बार बुलाए जाने के कारण थे। एक यह जानना कि सुनसान प्रकृति के सान्निध्य में—प्राणियों एवं सुविधाओं के अभाव में आत्मा को एकाकीपन कहीं अखरता तो नहीं।

दूसरे यह कि इस क्षेत्र में रहने वाले हिंस्र पशुओं के साथ मित्रता बना सकने लायक आत्मीयता विकसित हुई या नहीं। तीसरा वह समूचा क्षेत्र दिव्य है। उसमें ऋषियों ने मानवीय काया में रहते हुए देवत्व उभारा और देवमानव के रूप में ऐसी भूमिकाएँ निभाईं, जिन्हें साधन और सहयोग के अभाव में साधारण जनों के लिए कर सकना संभव नहीं था। उनसे हमारा प्रत्यक्षीकरण कराया जाना था।

पूज्य गुरुदेव ने उस दौर में दुर्गम हिमालय की यात्राएँ कीं, जब सड़क मार्ग भी सही ढंग से नहीं बने थे। पहली यात्रा के संदर्भ में गुरुदेव लिखते हैं कि पूरा एक वर्ष भी न हो पाया था कि बेतार का तार हमारे अंतःकरण में हिमालय का निमंत्रण ले आया।

चल पड़ने का बुलावा आ गया। प्रथम बार हिमालय जाना हुआ तो वह प्रथम सत्संग था। हिमालय दूर से तो पहले भी देखा था, पर वहाँ रहने पर किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, इसकी पूर्व जानकारी कुछ भी न थी। वह अनुभव प्रथम बार ही हुआ।

संदेश आने पर चलने की तैयारी की। मात्र देवप्रयाग से उत्तरकाशी तक उन दिनों सड़क और मोटर की व्यवस्था थी। इसके बाद तो पूरा रास्ता पैदल का था। ऋषिकेश से देवप्रयाग भी पैदल यात्रा करनी होती थी। सामान कितना लेकर चलना चाहिए, जो कंधे और पीठ पर लादा जा सके, इसका अनुभव न था। सो कुछ ज्यादा ही लादकर चल दिए, तो प्रतीत हुआ कि यह भारी है।

उतना हमारे जैसा पैदल यात्री लेकर न चल सकेगा। सो सामर्थ्य से बाहर की वस्तुएँ रास्ते में अन्य यात्रियों को बाँटते हुए केवल उतना ही रहने दिया, जो अपने से चल सकता था एवं उपयोगी भी था। शीत ऋतु और पैदल चलना, यह दोनों ही परीक्षाएँ कठिन थीं। उत्तरकाशी से नंदनवन की यात्रा पैदल चलकर पूरी करनी थी। हर दृष्टि से यात्रा कठिन थी।

इस यात्रा के साथ जुड़े परमपूज्य गुरुदेव के उत्तरकाशी से गंगोत्तरी के बीच के अहम पड़ावों के प्रेरक प्रसंग पठनीय हैं, हृदयंगम करने योग्य हैं। इनमें कुछ महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरक प्रसंगों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

पूज्यवर ने लिखा है कि उत्तरकाशी से भटवारी चट्टी, के बीच सड़क चौड़ा करने का काम चल रहा था, इस कारण मील के पत्थर नदारद थे। निश्चित रूप से इनके अभाव में यात्रियों को यह जानने में दुविधा हो रही थी कि कितना मार्ग पैदल पार हुआ व कितना शेष है। सामने से आ रहे यात्रियों से पूछकर आने वाली चट्टी (रास्ते के पड़ाव, जहाँ यात्रियों के विश्राम, आहार व ठहरने की व्यवस्था रहती थी) की दूरी का पता लगाना पड़ता।

आगे भटवारी से गंगोत्तरी जाते हुए पहाड़ी दीवार पर सफेदी पोतकर लाल अक्षर से मील और फर्लांग की जानकारी दी गई थी, जिसके आधार पर अगली मंजिल का पता चलता रहा, लेकिन आगे गंगोत्तरी से गोमुख के 18 मील लंबे रास्ते में पुन: इस तरह की जानकारी का अभाव रहा।

पूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि मील का पत्थर अपने आप में कितना तुच्छ है। उसकी कीमत, योग्यता, सामर्थ्य, विद्या, बुद्धि सभी उपहासास्पद हैं, पर वह अपने एक निश्चित और नियत कर्त्तव्य को लेकर यथास्थान जम गया है। हटने की सोचता तक नहीं। उसे एक छोटी बात मालूम है, धरासूँ इतने मील, इतने फर्लांग है। बस, केवल इतने से ज्ञान को लेकर यह जन-सेवा के पथ पर अड़ गया है।

उस पत्थर के टुकड़े की नगण्य और तुच्छ-सी यह निष्ठा अंतत: कितनी उपयोगी सिद्ध हो रही है। मुझ जैसे अगणित पथिक उससे मार्गदर्शन पाते हैं और अपनी परेशानी का समाधान करते हैं। सोचता हूँ कि इसी तरह हममें से प्रत्येक अपने क्षेत्र की कम-से-कम जानकारी में, कम स्थिति के लोगों में बहुत कुछ कर सकते हैं। आवश्यकता अपने उपयुक्त क्षेत्र में अड़ जाने की निष्ठा की है।

भटवारी से आगे गंगनानी चट्टी पड़ती है, जो गरम जल के स्रोत के लिए प्रख्यात है। मान्यता है कि यहाँ ऋषि पराशर ने प्राचीनकाल में तप किया था। गंगोत्तरी धाम की ओर बढ़ रहे उत्तरकाशी-गंगोरी-भटवारी को पार कर थके हुए तीर्थयात्री ठंढ में यहाँ के गरम जल-स्रोतों का विशेष लाभ लेते हैं। इनमें डुबकी लगाते ही जैसे सारी थकान और ठंढक छूमंतर हो जाती है।

ठंढे पहाड़ के गरम सोते शीर्षक के अंतर्गत पूज्यवर लिखते हैं कि इस शीत प्रदेश का वह तप्त कुंड भुलाए नहीं भूलेगा। मेरे जैसे हजारों यात्री इसका गुणगान करते रहेंगे, उसमें त्याग भी तो असाधारण है। स्वयं ठंढे रहकर दूसरों के लिए गरमी प्रदान करना, भूखे रहकर दूसरों की रोटी जुटाने के समान है। सोचता हूँ कि बुद्धिहीन जड़-पर्वत जब इतना कर सकता है, तो क्या बुद्धिमान बनने वाले मनुष्य को केवल स्वार्थी ही रहना चाहिए।

लगातार यात्रा के कारण पूज्य गुरुदेव के पैरों में छोटे-बड़े दस छाले पड़ गए थे। शुरू में तो लँगड़ा-लँगड़ाकर वे किसी प्रकार चलते रहे, लेकिन जब दो-तीन छाले फूट गए, तो चलना मुश्किल हो गया था। पथरीली कंकड़ीली राह पर नंगे पैर चलना भी कठिन हो गया था; सो आधी धोती फाड़कर दो टुकड़े किए गए और उन्हें पैरों में बाँधकर गुरुदेव आगे बढ़े।

वे इन विकट पलों के मार्मिक प्रसंगों का वर्णन करते हुए लिखते हैं—गंगनानी चट्टी से आगे जहाँ वर्षा के कारण बुरी तरह फिसलन हो रही थी, एक ओर पहाड़, दूसरी ओर गंगा का तंग रास्ता, उस कठिन समय में एक लाठी ने ही कदम-

कदम पर जीवन-मृत्यु की पहेली को सुलझाया। उसने भी यदि जूतों की तरह साथ छोड़ दिया होता तो कौन जाने आज यह पंक्तियाँ लिखने वाली कलम और उँगलियों का कहीं पता भी न होता। बड़ी आशा के साथ लिए हुए जूते ने काट खाया।

जिन पैरों पर बहुत भरोसा था, उनने भी दाँत दिखा दिए, पर वह कुछ पैसे की लाठी इतनी काम आई कि कृतज्ञता से इसका गुणानुवाद गाते रहने को जी चाहता है।

सुक्की चट्टी पर धर्मशाला में ठहरे हुए पूज्य गुरुदेव को सामने घाटी के उस पार बरफ से ढकी पर्वत की चोटी दिख रही थी। इससे पिघलती बरफ जल का रूप लेकर नीचे झरने के रूप में घाटी की सौंदर्य-वृद्धि कर रही थी। पास में बैठे दो बच्चों में एक इन्हें चाँदी का पहाड़ मान बैठा था; जबकि लड़की इससे सहमत नहीं थी कि खुले में इतनी चाँदी कैसे पड़ी रह सकती है, लोग उठाकर न ले जाएँगे।

पूज्य गुरुदेव ने दोनों बच्चों के बीच के रोचक विवाद को सुनकर हस्तक्षेप किया कि ये चाँदी के पहाड़ नहीं हैं, बल्कि बरफ के पहाड़ हैं, जो चमकने पर चाँदी जैसे लग रहे हैं। बच्चों का समाधान हुआ और उनके अन्य भी कई बालसुलभ प्रश्नों के उत्तर देकर पूज्य गुरुदेव ने उनकी ज्ञानवृद्धि की।

पूज्य गुरुदेव लिखते हैं, बचपन में मनुष्य की बुद्धि कितनी अविकसित होती है, लेकिन बड़े होने पर भी मनुष्य समझदार कहाँ हो पाता है। जैसे ये दोनों बच्चे बरफ को चाँदी समझ रहे थे, उसी प्रकार चाँदी-ताँबे के टुकड़ों को, इंद्रियछेदों पर मचने वाली खुजली को, नगण्य अहंकार को, तुच्छ शरीर को बड़ी आयु का मनुष्य भी न जाने कितना महत्त्व दे डालता है और उसकी ओर इतना आकर्षित होता है कि जीवनलक्ष्य को भुलाकर भविष्य को अंधकारमय बना लेने की परवाह नहीं करता। बरफ चाँदी नहीं है, यह बात मानने में इन बच्चों का समाधान हो गया था, पर तृष्णा और वासना जीवन लक्ष्य नहीं हैं, हमारी इस भ्रांति का कौन समाधान करे। गंगोत्तरी से पहले भैरों घाटी से होकर गुरुदेव गुजरे।

बहुत कड़ी चढ़ाई होने के कारण साँस फूल रही थी और एक पहाड़ की चट्टान के नीचे पूज्य गुरुदेव सुस्ताने को रुके। नीचे नदी की गर्जन-तर्जन देखते ही बन रही थी। पानी के छींटे तीस-चालीस फीट ऊँचे तक आ रहे थे। नदी का जोश एवं तीव्र प्रवाह यहाँ देखते ही बन रहा था।

पूज्य गुरुदेव इसकी व्याख्या में लिखते हैं—सोचता हूँ कि सोरौं आदि स्थानों में जहाँ मीलों की चौड़ाई गंगा की है, वहाँ जलधारा धीमे-धीमे बहती रहती है, वहाँ प्रवाह में न प्रचंडता होती है न तीव्रता, पर इस छोटी घाटी के तंग दायरे में होकर गुजरने के कारण जलधारा इतनी तीव्र गति से बही। मनुष्य का जीवन विभिन्न क्षेत्रों में बँटा रहता है, उसमें कुछ विशेषता पैदा नहीं हो पाती, पर जब विशिष्ट लक्ष्य को लेकर कोई व्यक्ति उस सीमित क्षेत्र में ही अपनी सारी शक्तियों को केंद्रित कर देता है, जो उसके द्वारा आश्चर्यजनक उत्साहवर्द्धक परिणाम उत्पन्न होते देखे जाते हैं। मनुष्य यदि अपने कार्यक्षेत्र को बहुत फैलाने, अनेक अधूरे काम करने की अपेक्षा अपने लिए एक विशेष कार्यक्षेत्र चुन ले तो वह भी इस तंग घाटी में गुजरते समय उछलती गंगा की तरह आगे बढ़ सकता है।

पूज्य गुरुदेव आगे लिखते हैं कि जलधारा के बीच पड़े हुए शिलाखंड पानी को टकराने के लिए विवश कर रहे थे। इसी संघर्ष में गर्जन-तर्जन हो रहा था और छोटे-छोटे रूई के गुब्बारे से बने पहाड़ ऊपर उठ रहे थे। सोचता हूँ यदि कठिनाइयाँ जीवन में न हों, तो व्यक्ति की विशेषताएँ बिना प्रकट हुए ही रह जाएँ। टकराने से शक्ति उत्पन्न होने का

सिद्धांत एक सुनिश्चित तथ्य है। आराम का, शौक-मौज का विलासी जीवन निर्जीवों से कुछ ही ऊँचा माना जा सकता है। कष्ट, सहिष्णुता, तितिक्षा, तपश्चर्या एवं प्रतिरोधों में बिना खिन्नता मन में लाए वीरोचित भाव से निपटने का साहस यदि मनुष्य अपने भीतर एकत्रित कर सके, तो उसकी कीर्ति भी उस स्थान की भाँति गर्जन-तर्जन करती हुई दिग्दिगंत में व्यापक हो सकती है।

गंगा डरती नहीं, न शिकायत करती है, यह तंगी से होकर गुजरती है, मार्ग रोकने वाले रोड़ों से घबराती नहीं, वरन उनसे टकराती हुई अपना रास्ता स्वयं बनाती है। काश, हमारी अंतश्चेतना भी ऐसे प्रबल वेग से परिपूर्ण हुई होती, तो व्यक्तित्व के निखरने का कितना अमूल्य अवसर हाथ लगता। अंततः पूज्य गुरुदेव अपने पहले पड़ाव गंगोत्तरी धाम के समीप पहुँचे।

उन्होंने लिखा है कि प्रातःकाल से वर्षा हो रही थी। यों तो बादल पहाड़ों की चोटियों पर रोज दिखते, पर आज तो वे बहुत ही नीचे उतर आए थे। धुनी हुई रूई की तरह बादलों के फाहे आर-पार हो रहे थे। एक सफेद अँधेरा चारों ओर घिर जाता, कपड़ों में नमी आ जाती और शरीर भी गीला हो जाता। जब वर्षा होती तो बादल गलकर पानी की बूँदों में परिणत हो जाते।

पूज्य गुरुदेव लिखते हैं—अपने घर गाँव में जब हम बादलों को देखा करते थे, तब वे बहुत ऊँचे लगते थे। नानी कहा करती थीं कि जहाँ बादल हैं, वहीं देवताओं का लोक है। ये बादल देवताओं की सवारी हैं, इन्हीं पर चढ़कर वे इधर-उधर घूमा करते हैं और जहाँ चाहते हैं पानी बरसा देते हैं। बचपन में कल्पना किया करता था कि काश मुझे भी एक बादल चढ़ने को मिल जाता तो कैसा मजा आता, उस पर चढ़कर चाहे जहाँ घूमने निकल जाता। आज बचपन की कल्पनाओं के समान बादलों पर बैठकर उड़े तो नहीं, पर उन्हें अपने साथ उड़ते तथा चलते देखा तो प्रसन्नता बहुत हुई। हम इतने ऊँचे चढ़े कि बादल हमारे पाँवों को छूने लगे। सोचता हूँ कि बड़े कठिन लक्ष्य जो बहुत ऊँचे और दूर मालूम पड़ते हैं, मनुष्य इसी तरह प्राप्त कर लेता होगा, पर्वत चढ़ने की कोशिश की तो बादल के बराबर पहुँच गया।

कर्त्तव्य कर्म का हिमालय भी इतना ही ऊँचा है। यदि हम उस पर चढ़ते चलें तो साधारण भूमिका में विचरण करने वाले शिश्नोदर परायण लोगों की अपेक्षा वैसे ही अधिक ऊँचे उठ सकते हैं, जैसे कि निरंतर चढ़ते-चढ़ते दस हजार फीट ऊँचाई पर आ गए।

ऊँचा उठने की प्रवृत्ति हमें बादलों तक पहुँचा देती है, हमारे समीप तक स्वयं उड़कर आने के लिए विवश कर देती है। बादलों को छूते समय ऐसी-ऐसी भावनाएँ मन में उठती रहीं, पर बेचारी भावनाएँ अकेली क्या करें। सक्रियता का बाना उन्हें पहनने को न मिले, तो वे एक मानस तरंग मात्र ही रह जाती हैं।

इस तरह पूज्य गुरुदेव के हिमालय प्रवास का गंगोत्तरी धाम की ओर बढ़ता सफर प्रेरणास्पद संस्मरणों से भरा हुआ है, जिसे विस्तार में सुनसान के सहचर पुस्तक में पढ़ा जा सकता है। ❑

जात-पाँत इसी रूप में बनी रही जैसी कि आज है तो उससे देश कमजोर ही होता जाएगा। भारत की एकता को नष्ट करने और पतन के गर्त में धकेलने का अधिकांश दोष इसी कुप्रथा का है। हमारा लक्ष्य ऐसे समाज का निर्माण करने का होना चाहिए जिसमें सबको समान अवसर, न्याय और सम्मान प्राप्त हो सके। ***—लाजपत राय***

क्या खाएँ? क्यों खाएँ? कैसे खाएँ?

हम क्या खाएँ, क्यों खाएँ तथा कैसे खाएँ। प्रश्न सुनने में बहुत ही साधारण-सा लग सकता है, लेकिन समाज के एक बड़े समूह को, विशेषकर नई पीढ़ी को इस संदर्भ में बहुत अनभिज्ञ देखा जा सकता है। मॉल्ज से लेकर कैंटीनों एवं बड़े रेस्तरों में जिस तरह के भोजन के विकल्प उपलब्ध दिखते हैं और धड़ल्ले से इनका उपभोग करते देखा जाता है और लोगों की खान-पान की आदतों पर जब एक नज़र पड़ती है, तो यही लगता है कि आधुनिक मनुष्य आहार-विज्ञान की आधारभूत जानकारियों से भी परिचित नहीं, जो उसके स्वस्थ एवं निरोगी जीवन के लिए आवश्यक हैं।

मनुष्य एक आध्यात्मिक प्राणी है, शरीर व मन उसके आवरण एवं यंत्र हैं, जिनका उपयोग करते हुए उसे जीवन के उच्चतर ध्येय प्राप्त करने होते हैं। परिवार, समाज और अपने क्षेत्र की व्यावहारिक जिम्मेदारियाँ निभाते हुए उसे आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त करना होता है। स्वस्थ शरीर इसका आधार है और इसको पुष्ट एवं सबल रखना उसका पावन दायित्व है। इसमें उसकी खान-पान की आदतें महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य को जीवित रहने के लिए खाना है, न कि खाने के लिए जीवित रहना है।

कुछ निम्नस्तर के कीट एवं पशु ही इस तरह का जीवन जीते हैं, अन्यथा पशु जगत् में भी आहार को लेकर संयम बरतते देखा जा सकता है, जो उनके नीरोग एवं स्फूर्त जीवन का आधार रहता है। व्यावहारिक रूप में मनुष्य के लिए पौष्टिक आहार अपेक्षित है, जो हर देश, काल व परिस्थिति के अनुरूप हर संस्कृति में पीढ़ियों से निर्धारित है।

भारतीय संदर्भ में आहार को औषधि के रूप में ग्रहण करने का शास्त्र आदेश है। जिस तरह रोग को ठीक करने के लिए औषधियों का उपयोग किया जाता है, उसी तरह क्षुधा रोग के निवारणार्थ आहार का सेवन किया जाना अपेक्षित है और फिर मनुष्य के पेट की क्षमता सीमित है, जो कुछ घंटे के श्रम से अर्जित पूँजी से पूरी की जा सकती है।

यही स्थिति रोटी के साथ कपड़े और मकान की है, लेकिन लोगों को खाने के लिए जीवित देखा जा सकता है। स्वाद के लिए तरह-तरह के मिर्च-मसालेदार व्यंजनों से लेकर मांसाहार एवं मादक पदार्थों का सेवन करते देखा जा सकता है— जिसका किसी भी रूप में जीवन के विकास, स्वास्थ्य एवं संतुलन से अधिक लेना-देना नहीं रहता और कालांतर में ये ही उसके लिए नाना प्रकार की आधि-व्याधियों का कारण बनते हैं।

स्वाद के नाम पर ठूँस-ठूँसकर खाना रोग का पहला मुख्य कारण रहता है। ऊपर से इनका तला-भुना स्वरूप, आवश्यकता से अधिक गरिष्ठ एवं नमक-मीठे का उपयोग आहार की पौष्टिकता को नष्ट कर देता है।

शोध के आधार पर स्पष्ट है कि लोग भूख से उतना नहीं मर रहे, जितना कि आहार की अधिकता से और कई तरह के रोगों को उपवास और थोड़ा भूखा रहते हुए भी ठीक किया जा सकता है। कुछ आहार विशेषज्ञ तो कैंसर तक का उपचार इसके माध्यम से होता सिद्ध कर चुके हैं।

आश्चर्य नहीं कि आज इंटरमिटेंट फास्टिंग का चलन बढ़ रहा है, जो उपवास का ही एक स्वरूप है। जो परंपरा से विभिन्न पर्व-त्योहारों में

व्रत-नियमों की परंपरा के रूप में हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है।

हर अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी आदि में व्रत-उपवास का विशेष विधान रहता है, जिसमें नैष्ठिक व्रती कुछ विशेष पदार्थों के निषेध से लेकर निर्जला व्रत का पालन करते देखे जा सकते हैं। इनके स्वास्थ्य लाभों को देखते हुए लगता है कि ये पूर्णतः विज्ञानसम्मत हैं, जिनकी आधुनिक विज्ञान भी पुष्टि कर रहा है।

रसायन एवं कीटनाशक के इस युग में यह भी आवश्यक हो जाता है कि आहार यथासंभव प्राकृतिक एवं जैविक हो। इसके साथ जल का पर्याप्त सेवन करें। दिन भर में अपनी आयु एवं शरीर के भार के अनुरूप समुचित जल लिया जा सकता है। आहार को पचाने से लेकर विषाक्त तत्त्वों के निष्कासन में जल की विशेष भूमिका रहती है।

आहार में शाक-सब्जी और मौसमी फलों का भरपूर उपयोग करें, जिनकी काया के सूक्ष्म पोषण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। साथ ही अपने शरीर की अवस्था के अनुरूप सुपाच्य एवं पौष्टिक अन्न, दाल व अन्य खाद्य पदार्थों की व्यवस्था की जा सकती है।

आहार में अधिक नमक, चीनी और वसा को लेने से बचें। इस संदर्भ में फास्ट फूड, सॉफ्ट ड्रिंक्स और कोल्ड ड्रिंक्स से यथासंभव दूर रहें। इनमें हानिकारक वसा से लेकर चीनी की उच्च मात्रा नाना रूपों में रोगों का कारण बनती है। इनकी जगह नीबू पानी से लेकर छाछ तथा वनौषधीय पेय जैसे तमाम तरह के देसी विकल्प लिए जा सकते हैं।

इसके साथ समय पर ही भोजन को ग्रहण करें और इसका समय निश्चित रखें। बिना भूख भोजन न ग्रहण करें। आहार के संदर्भ में इसके संस्कार का बहुत महत्त्व है।

शास्त्रों का एकमत है कि जैसा खाए अन्न वैसा बने मन। आहार किस भाव के साथ तैयार किया जा रहा है, यह माने रखता है। घर में माताजी के हाथों से पकाया हुआ भोजन और रेस्टोरेंट के भोजन में जमीन-आसमान का अंतर रहता है।

यदि आहार के साथ शुद्ध-सात्त्विक भाव जुड़ा है, तो इसकी सूक्ष्म गुणवत्ता कई गुणा बढ़ जाती है। नाम-जप के साथ तैयार हो रहा भोजन महाभोग बन जाता है तो वहीं ईश्वर को भोग लगा कर ग्रहण किया जा रहा आहार महाप्रसाद बन जाता है।

आहार करते समय की मनःस्थिति भी माने रखती है, जिसको प्रायः नजरअंदाज किया जाता है। आज की पीढ़ी को टीवी को देखते हुए, मोबाइल का उपयोग करते हुए भोजन करते देखा जा सकता है, जो उचित नहीं। ऐसे में एक तो मनःस्थिति शांत-स्थिर नहीं रहती, दूसरा ऐसे में बिना अधिक चबाए ही भोजन उदरस्थ हो रहा होता है और साथ ही आवश्यकता से अधिक भोजन की संभावना रहती है।

भोजन को भी जीवन-साधना का एक हिस्सा मानते हुए इसे शांत मन से खूब चबा-चबाकर ग्रहण करें। ऐसे में आहार का पाचन सरल हो जाता है और आहार में संतुष्टि का भाव जुड़ने से मिताहार भी सहज रूप में संभव होता है।

भोजन के समय बेहतर है कि अनावश्यक बातचीत न करें, मौन रहें। सबसे पहले ईश्वर का सुमिरन करें, आभार व्यक्त करें। अन्न परमेश्वर को याद करें, प्रणाम करें। गायत्री परिजनों में गायत्री महामंत्र से भोजन प्रारंभ करने की पुनीत परिपाटी स्वागत योग्य है। हर ग्रास के साथ इष्ट का नाम-सुमिरन चलता रहे, तो ऐसा भोजन प्रसाद बनकर तन के साथ मन व आत्मा को भी पुष्ट करने वाले प्रयोग के रूप में सिद्ध होता है। ❑

स्वयं को जानें

सुकरात की गणना संसार के महान विद्वानों और धर्मगुरुओं में की जाती है। उनका जन्म एथेन्स में हुआ था। यद्यपि उन्हें पढ़ने-लिखने की सुविधा न मिल सकी थी, तब भी उन्होंने अपने अध्यवसाय के बल पर उच्चस्तर की विद्वत्ता अर्जित कर ली थी।

महात्मा सुकरात ने जितना पढ़ा था, उससे कहीं अधिक वे इस संसार को एक बड़ी पाठशाला मानते थे और जीवन के अनुभवों को सच्ची शिक्षा मानते थे। इस संसाररूपी पाठशाला में महात्मा सुकरात ने जो अनुभव संचय किए थे, वही उनकी एकमात्र संपत्ति थी। इनके अतिरिक्त न तो उनके पास कोई और संपत्ति थी और न उन्होंने कभी कुछ संचय करने की इच्छा ही की।

वे कहा करते थे कि ज्ञान से बढ़कर संसार में और क्या संपत्ति हो सकती है? उसका कुछ अंश मुझे प्राप्त हुआ है। इससे मेरी आत्मा को पूर्ण शांति है। इसके अतिरिक्त मुझे और किसी प्रकार की संपत्ति नहीं चाहिए।

चेहरे से कुरूप पर आत्मज्ञान की दृष्टि से आत्मिक सौंदर्य से पूरित सुकरात के हृदय में जो ज्ञान की मनोहारी ज्योति जलती थी, उसने एथेन्सवासियों को अपने पर पतंगे की तरह मोहित बना लिया था। उन्होंने अपनी साधना द्वारा जिस आत्मप्रकाश का दर्शन किया था, उसने उनके जीवन की सारी कुरूपता अपने में डुबोकर सुंदरता में बदल दी थी।

वे जिस समय जहाँ भी जाते थे, वहीं शिष्यों-जिज्ञासुओं और मुमुक्षु लोगों से घिरे रहते थे। पता चलते ही लोग दूर-दूर से दौड़कर उस गली, चौराहे पर पहुँच जाया करते थे, सुकरात जहाँ खड़े जनता को उपदेश कर रहे होते।

महात्मा सुकरात का मुख्य विषय आत्मा संबंधी ज्ञान ही होता था। वे आत्मज्ञान प्राप्त करने पर बल देते हुए कहा करते थे—"अपने को जानो। यदि मनुष्य अपने आप को और अपने धर्म के सच्चे स्वरूप को जान ले तो उसके लिए संसार में तो कोई समस्या ही न रह जाए और न ही दुःख का कोई कारण। आत्मा का ज्ञान ही सत्य का स्वरूप है। उसको पा लेना ही मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा पुण्य है और उसके प्रति अज्ञान की अवस्था ही सबसे बड़ा पाप है। आत्मज्ञान से ही आत्मा की मुक्ति व व्यक्ति को सभी प्रकार के बंधनों व दुःखों से मुक्ति मिल पाती है। आत्मज्ञान के अभाव में व्यक्ति सदैव बंधन में अर्थात परतंत्र ही होता है। सच्चा सुख परतंत्रता में नहीं, स्वतंत्रता में है। आत्मज्ञान ही

त्रयो धर्मस्कन्धा
यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।

—छांदोग्योपनिषद्-2/23/1

अर्थात धर्म के तीन आधार हैं—

1. यज्ञ,

2. अध्ययन,

3. दान।

मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए। आत्मज्ञान से ही आप अपनी कमजोरियों को देख-समझ पाते हैं और उन्हें दूर कर पाते हैं और आप कुछ भी कर पाने में समर्थ हो जाते हैं। आप एक अच्छी जिंदगी जीने की राह पर चल पड़ते हैं; क्योंकि किसी भी तरह की निम्नस्तरीय जिंदगी जीना नहीं, बल्कि एक अच्छी जिंदगी जीना ही महत्त्वपूर्ण है और यह आत्मज्ञान से ही संभव है। आप स्वयं के बारे में जानने के लिए स्वयं के बारे में सतत चिंतन-मनन करें। स्वयं के बारे में सोचें। हमारी संस्कृति में स्वयं को जानना असाधारण प्रतिष्ठा रखता है।''

सुकरात का ज्ञान से तात्पर्य न्याय, सद्गुण और चिरंतन या धार्मिक विचारों के ज्ञान से था। उनका मानना था कि न्याय, सद्गुण व चिरंतन ज्ञान पहले से ही मनुष्य में निहित रहता है। यह ज्ञान प्रसुप्त होता है, जिसे कौशलपूर्ण प्रश्नों से पुनः स्मृत किया जा सकता है। यह ज्ञान किस प्रकार मनुष्य में उपस्थित रहता है ?

इस प्रश्न ने सुकरात को आत्मा के अमरत्व में विश्वास के लिए प्रेरित किया; क्योंकि उन्हें यह प्रतीत हुआ कि आत्मा की अमरता से ही मानव न्याय, सद्गुण एवं चिरंतन विचारों के बारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। चूँकि आत्मा अमर है, इसलिए इहलोक और परलोक की सभी वस्तुओं को इसने देखा है और सब कुछ इसके द्वारा जाना हुआ है। इसलिए हमें सद्गुण या किसी अन्य वस्तु के बारे में आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि यह ज्ञान हम अपने में पहले से उपस्थित देखते हैं।

अतः हम अपने में पहले से उपस्थित ज्ञान के प्रति जागरूक बनें। सतत तर्क, चिंतन-मनन करते रहें व सत्यान्वेषी बनें; क्योंकि सत्यान्वेषी को ही सत्य का पूर्ण और भ्रमरहित साक्षात्कार होता है। अस्तु सभी को, स्वयं को जानने का अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि स्वयं को जान लेना ही सर्वश्रेष्ठ है। स्वयं को जान लेने पर ही जीवन के रहस्य को समझा जा सकता है और सुंदर व सुखमय जीवन जिया जा सकता है। स्वयं को जाने बिना, जीवन के रहस्य को जाने बिना जीने का कोई अर्थ नहीं। ❑

कमरे के एक कोने में मोमबत्ती जल रही थी, दूसरे में धूपबत्ती। मोमबत्ती तिरस्कारपूर्वक धूपबत्ती को देखकर बोली—''मैं भी कितनी भाग्यवान हूँ, चारों ओर मेरा ही प्रकाश फैल रहा है, सबकी आँखें मेरी ओर ही रहती हैं।'' धूपबत्ती बोली—''यह तो ठीक है, परंतु परीक्षा के कठिन समय में धैर्य और साहस के साथ अडिग रह सको, तभी चमक की सार्थकता है।'' मोमबत्ती अपने अभिमान में चूर थी, उसने धूपबत्ती की बात अनसुनी कर दी। तभी हवा का तेज झोंका आया, उसके प्रहार से मोमबत्ती बुझ गई, पर धूपबत्ती ने और तीव्रता से सुगंध बिखेरनी प्रारंभ कर दी। कमरे में आच्छन्न नीरवता बोली—''वह चमक किस काम की, जो एक झोंके का सामना भी न कर सके।'' क्षणिक उपलब्धियों पर अहंकार करना मूढ़ों का काम है।

प्रकाश का वरण करें

इस धरती पर जितने भी प्राणी हैं, वे हमारे ही रूप हैं अर्थात जो कुछ हमें अनुभव होता है, वैसा ही उन्हें भी। मात्र इतना अंतर है कि हम बुद्धिपूर्वक जीते हैं, वे प्रवृत्तिवश। इसमें उनका कोई दोष नहीं, जब आत्मा उसी ढाँचे में खड़ी कर दी जाए कि उसे तो मात्र भोग तक सीमित रहना है तो कुछ भी नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न उठता है कि मनुष्य ने अपनी विशेषता का उपयोग किस प्रकार किया? उसने अपने ही सजातियों का भक्षण किया, ताकि उसकी जिह्वा तुष्ट हो सके। उसने करुणा का प्रदर्शन नहीं किया, जो कि उसका ही उच्चतर आयाम है।

आज वह धरती का विनाश करने पर उतारू हो आया है तथा उसकी गति को रोकने वाला कोई नहीं। हम क्यों ऐसे हो गए? वह सब कुछ करते हैं, जिससे कि अपनी मर्यादा भंग हो, दूसरों को कष्ट देते हैं स्वयं उन्मुक्त होने का दिखावा करते हैं। मांसाहार एक अभिशाप है। कभी जब भोजन की व्यवस्था न रही हो तो इसे ग्रहण कर लिया गया होगा, पर आज तो हम विकसित हो गए हैं फिर ऐसा अंधानुकरण क्यों?

ऐसे ही हम कितने ही रूपों में पशु-पक्षियों के शोषण का कारण बनते हैं। उनके घर जला देना, पर्यावरण को इतना दूषित कर देना कि वे स्वतः ही मिट जाएँ, उन पर अनुचित प्रयोग-परीक्षण करना आदि। यह सब कैसे रुके? हमें जो संपदा मिली है, उसका उपयोग ठीक से नहीं हुआ।

साधारण सोचने-समझने से ऊँची चीज है प्रज्ञा-वह यदि जाग्रत हो जाए तो मनुष्य के क्रियाकलाप आत्मा के केंद्र से होने लगेंगे। इसे जीवन का भाग्योदय कहा जाए तो गलत नहीं। हम इसी के लिए बने हैं, परंतु हमने अपनी विशेषता को त्याग दिया।

जिनके लिए हम संकट के ही जन्मदाता हैं, यदि उनसे एकता का अनुभव करते तो परिणाम भिन्न होता। फिर उनकी दुर्दशा पर हमें तरस आता हम उनके लिए कुछ करने चल पड़ते, पर पहले अज्ञान का दूर होना आवश्यक है। एक बार हम प्रकाश का वरण कर लें तो सच में धन्य होंगे। हमारे संपूर्ण कार्यक्रम उज्ज्वल भविष्य की दिशा में होंगे तथा पर-पीड़न के महान दोष से हम बच पाएँगे। ❑

ॐ बालरविद्युति मिन्दु किरीटां तुंगकुचां नवनत्रयुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदांकुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

अर्थात उन माँ भुवनेश्वरी को नमस्कार है, जिनके श्रीअंगों की प्रभा प्रातःकाल के सूर्य के सदृश है और जिनके मस्तक पर चंद्रमा का मुकुट है। वे त्रिनेत्रों से युक्त हैं, उनके मुख पर मुस्कान की छटा है और उनके हाथों में वरद, अंकुश, पाश एवं अभय मुद्रा शोभायमान हैं।

संचार माध्यमों से सकारात्मक परिवर्तन

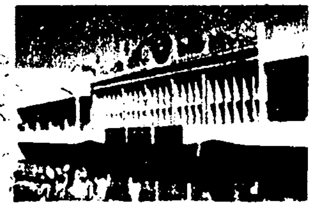

हम जिस दुनिया में रहते हैं, इसकी एक सच्चाई है—पल-पल परिवर्तनशीलता। परिवर्तन का शाश्वत नियम हम सभी पर लागू है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि परिवर्तन की दिशा यदि सही और सकारात्मक होती है तो ऐसा परिवर्तन जीवन के चारों ओर खुशहाली, सुख और आनंद का कारण बनता है, परंतु यदि परिवर्तन की दिशा गलत हुई—नकारात्मक हुई तो ऐसा परिवर्तन जिंदगी के भीतर और बाहर—सभी स्तर पर कष्टकारी और घातक ही सिद्ध होता है। अत: परिवर्तन को सकारात्मकता से जोड़े रखने में ही व्यक्ति, समाज और विश्व का कल्याण सन्निहित है।

चूँकि इस आधुनिक युग में जनसमाज के मनोभावों को तैयार व उत्प्रेरित करने में संचार माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका और स्थान है—तब ऐसे में सकारात्मक मीडिया, सकारात्मक पत्रकारिता, सकारात्मक जानकारी के अन्य स्रोतों द्वारा सकारात्मक परिवर्तन की दिशा को बनाए रखने की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी निभानी आवश्यक है।

यह सर्वप्रत्यक्ष है कि यह युग सूचना एवं संचार क्रांति का है। मीडिया भी अब अपनी पारंपरिक तकनीकों से आगे इंटरनेट और डिजिटल युग में पहुँचकर देश-दुनिया की खबरें पल भर में पहुँचा देने में समर्थ हैं। खबरों और जानकारियों का अथाह समुद्र अब मोबाइल, कंप्यूटर के माध्यम से सभी की पहुँच में है।

ऐसे में आवश्यक है कि इन संचार के सशक्त माध्यमों को सकारात्मक परिवर्तन के लिए प्रयुक्त किया जाए। यदि यह संभव हो सके तो व्यक्ति एवं समाज के जीवन में सकारात्मकता को व्यापक रूप से फलित होते जल्द ही देखा जा सकता है।

सकारात्मक परिवर्तन तथा इसमें मीडिया की भूमिका को लेकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। यह शोध अध्ययन विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के अंतर्गत वर्ष-2022 में पूर्ण किया गया है। इस शोध को शोधार्थी दीपक कुमार द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं प्रो0 सुखनंदन सिंह के निर्देशन में पूरा किया गया है।

वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक रीति से संपन्न इस शोध अध्ययन का विषय है—**'सकारात्मक परिवर्तन में संचार माध्यमों की भूमिका—आचार्य पं. श्रीराम शर्मा के विशेष संदर्भ में।'** शोधार्थी द्वारा इस विशिष्ट शोध को कुल सात अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय **'विषय प्रवेश'** है। इसके अंतर्गत शोध विषय की प्रस्तावना, अध्ययन की आवश्यकता, साहित्य सर्वेक्षण, शोध के उद्‌देश्य, शोध प्रविधि, शोध की प्रासंगिकता, शोध प्रारूप आदि बिंदुओं की विवेचना प्रस्तुत की गई है। वर्तमान में व्यक्ति के सामने अनेक समस्याएँ मौजूद हैं। चारों ओर नकारात्मकता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ हैं। ऐसी नकारात्मक परिस्थितियों को सकारात्मकता में परिवर्तित करने के सूत्र महापुरुषों के पास सहजता से उपलब्ध रहते हैं।

ऐसा ही जीवंत उदाहरण परमपूज्य गुरुदेव के विचार एवं उनकी युगनिर्माण योजना तथा उसकी संचार-प्रक्रिया है, जो पूर्णरूपेण सकारात्मक परिवर्तन को समर्पित है। उनकी योजना व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र के स्तर पर सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न कर युग निर्माण की—नव निर्माण की है, जिसके लिए एक सशक्त प्रचार-प्रसार का मीडिया तंत्र कार्यशील है।

सकारात्मक परिवर्तन का यह आदर्श संचार तंत्र आधुनिक मीडिया को सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में गतिशील बनाने में समर्थ दिखाई देता है। विभिन्न संचार-माध्यमों का उपयोग सकारात्मक परिवर्तन हेतु किस प्रकार किया जा सकता है? इस प्रश्न का यह शोध अध्ययन पर्याप्त तथ्यों, प्रमाणों एवं प्रेरणाओं से युक्त समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

अध्ययन का द्वितीय अध्याय है—'**संचार एवं संचार माध्यम—एक परिचय।**' इसके अंतर्गत संचार का अर्थ, अवधारणा एवं स्वरूप तथा संचार माध्यम व इसके प्रकारों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है। इसके साथ ही संचार के पश्चिमी व भारतीय सिद्धांतों व मॉडलों को भी विवेचित किया गया है।

संचार एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति एकदूसरे के विचारों, भावनाओं और प्रयोजनों में सहभागी होता है। अत: संचार का सीधा अर्थ यही है—किसी सूचना या संदेश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संप्रेषित करना। मनुष्य जीवन में संचार की आदिकाल से लेकर अब तक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रारंभ में इसका स्वरूप धार्मिक गतिविधियों, लोककथाओं, लोकगीतों, लोककलाओं, नाटकों, पर्वों-परंपराओं में निहित रहा। मुद्रण के आविष्कार के पश्चात तीव्रता से इसके माध्यम एवं स्वरूप में बदलाव आया।

पुस्तक, समाचारपत्र-पत्रिका, पैम्फलेट, पोस्टर आदि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने इसे और ज्यादा व्यापक बनाया और टेलीफोन, टेलीविजन, रेडियो, टेप रिकॉर्डर, सिनेमा, कंप्यूटर, इंटरनेट, सीडी-डीवीडी, पॉडकास्टर जैसे संचार माध्यमों ने सूचना जगत् में नई क्रांति को उत्पन्न कर दिया। दृश्य और श्रव्य इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के नए क्षेत्र विकसित हुए।

इसके साथ ही कंप्यूटर, इंटरनेट, सोशल या डिजिटल मीडिया अब नए मीडिया के रूप में जनसंचार का प्रभावी माध्यम बन गया है। संचार-प्रक्रिया को विशेषज्ञों द्वारा मुख्य रूप से चार विभागों में रखा जाता है—

(1) अंत:वैयक्तिक संचार—जिसमें व्यक्ति अपने भीतर ही स्वयं से चिंतन-मनन द्वारा बातचीत करता है।

(2) अंतर्वैयक्तिक संचार—जिसमें दो व्यक्ति परस्पर विचारों का विनिमय साथ बैठकर करते हैं।

(3) समूह संचार—जिसमें व्यक्ति एक समूह विशेष के सामने विचार विमर्श, गोष्ठी आदि करता है।

(4) जनसंचार—जिसमें समूचे जनसमुदाय से संचार के अनेक माध्यमों द्वारा विचारों का आदान-प्रदान होता है। जनसमुदाय में सभी वर्ण, जाति, संप्रदाय, विचारों के लोग सम्मिलित होते हैं।

संचार के विकास के साथ ही पूर्व व पश्चिम की दुनिया में इसके अनेक सिद्धांतों का भी निर्माण होता रहा है, और सबका अपना महत्त्व है। पाश्चात्य देशों के प्रमुख संचार सिद्धांत हैं—अरस्तू का संचार सिद्धांत, अभिप्रेरणा सिद्धांत, संज्ञान असंतुलन सिद्धांत, निषिद्ध कर्म-सिद्धांत, चर्चावली निर्धारण सिद्धांत, खेल-सिद्धांत, मैक्लुहान का सिद्धांत, उपयोग और तृप्ति का सिद्धांत, निर्भरता सिद्धांत, बुलेट सिद्धांत, प्रेस के चार सिद्धांत आदि।

इसी प्रकार भारतीय संचार सिद्धांतों का प्रारंभ श्रवण चिंतन-मनन से प्रारंभ हुआ, जो परवर्ती काल में विपुल रूप से शास्त्रों और परंपराओं में विकसित हुआ है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और भर्तृहरि के वाक्यपदीय में साधारणीकरण संचार की रूपरेखा प्रस्तुत हुई है।

वैदिक संचार-सिद्धांत में श्रुति ज्ञान का विस्तार परंपराओं में तथा व्याकरणाचार्यों के ग्रंथों व साहित्य में प्रकट हुआ है। संचार के साधारणीकरण सिद्धांत के आधार पर वेदांतिक मेटा-सैद्धांतिक धारणा के रूप में इसकी विशेषताओं को समझा गया है। श्रोता अभिरुचि परिष्कार ही भारतीय संचार-सिद्धांत का लक्ष्य रहा है। शोधार्थी ने इस अध्याय में संचार के उक्त सभी प्रमुख सिद्धांतों व मॉडलों की विस्तृत विवेचना की है।

इस अध्ययन का तृतीय अध्याय है—**'सकारात्मक संचार से परिवर्तन—ऐतिहासिक एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में।'**

इसकी अंतर्वस्तु में सकारात्मक संचार का अर्थ, अवधारणा एवं विशेषताएँ, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सकारात्मक संचार, संकल्पना एवं संभावनाएँ, वर्तमान में सकारात्मक संचार, सकारात्मक संचार से परिवर्तन तथा वैश्विक समस्याओं के समाधान में सकारात्मक संचार की भूमिका आदि बिंदुओं की विस्तृत विवेचना-व्याख्या प्रस्तुत हुई है। सकारात्मक संचार में जनमानस के भीतर सत्य, प्रेम, करुणा, सेवा, संवेदना जैसी दिव्य भावनाओं को संप्रेषित कर निराशा के स्थान पर आशा, उत्साह और सकारात्मकता का संचार किया जाता है।

इसके साथ ही श्रेष्ठ आदर्शों, मूल्यों एवं परंपराओं का जागरण कर अवस्थाओं-मान्यताओं का संरक्षण एवं विकास कर प्रेम, भक्ति, करुणा, दया, विनम्रता, सहयोग, समायोजन का वातावरण बनाए रखने में सहायता प्रदान की जाती है।

सकारात्मक संचार के आदि संचारक देवर्षि नारद को माना जाता है, जिनके प्रत्येक संचार का लक्ष्य मंगलकारी एवं कल्याणकारी ही रहा। भारतीय संदर्भ में प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक सकारात्मक संचार के विभिन्न आयामों तथा आवश्यकता को इस अध्याय में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय—**'आचार्य पं० श्रीराम शर्मा का जीवन परिचय एवं अभिनव संचार प्रयोग'** है। इसके अंतर्गत एक प्रभावी संचारक के रूप में आचार्य पं० श्रीराम शर्मा का जीवन परिचय तथा संचार के उनके अभिनव प्रयोगों व सिद्धांतों की विस्तृत विवेचना की गई है।

आचार्य जी ने अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन से लेकर तीन हजार से अधिक की संख्या में साहित्य लेखन कर विचार क्रांति के रूप में सकारात्मक संचार का प्रत्यक्ष आदर्श प्रस्तुत किया है। विचार, भाव और कर्मों के परिष्कार के उद्देश्य से युगनिर्माण योजना बनाकर लाखों-करोड़ों लोगों को जीवन की नई दृष्टि व कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त किया है।

आचार्य जी के संचार मॉडल में व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्वनिर्माण के सकारात्मक तत्त्वों व प्रक्रियाओं का समावेश है तथा नैतिक, सामाजिक व बौद्धिक क्रांति के द्वारा समग्र कल्याण की भावना का साकार रूप प्रकट है। उनके संचार आदर्शों को अपनाकर किसी भी विषम परिस्थिति में सकारात्मक परिवर्तन को सुनिश्चित बनाया जा सकता है। वर्तमान में ऐसे ही संचार आदर्शों को अपनाने की आवश्यकता है।

पंचम अध्याय है—**'आचार्य पं० श्रीराम शर्मा द्वारा प्रयुक्त विभिन्न संचार माध्यमों की विशेषता व प्रासंगिकता।'** इसके अंतर्गत आचार्यश्री द्वारा प्रयुक्त विभिन्न संचार माध्यमों का विवेचन किया

गया है। इन माध्यमों में उनके द्वारा प्रयुक्त परंपरागत संचार माध्यम, प्रिंट संचार, इलेक्ट्रॉनिक व अन्य संचार सम्मिलित हैं।

इसके साथ ही पूज्य गुरुदेव के संचार की विशेषताओं व वर्तमान प्रासंगिकता का विस्तार से विवेचन किया गया है। पूज्य गुरुदेव के संचार माध्यमों में लोक परंपरागत माध्यमों का व्यापक रूप से स्थान है, जैसे—यज्ञीय संचार, संस्कार संचार, पर्व-त्योहार संचार, कथा संचार, लोक कला-नाट्यमंच संचार, धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण संचार, शिक्षण-प्रशिक्षण सत्र, व्याख्यान, संभाषण, सत्संग, स्वाध्याय मंडल, प्रभात फेरी, सम्मेलन, बालसंस्कार सभाएँ, झोला पुस्तकालय, ज्ञानरथ आदि।

इसी प्रकार प्रिंट माध्यमों में अखण्ड ज्योति व अन्य पत्र-पत्रिकाएँ, सत्साहित्य लेखन, बॉक्स स्तंभ, जीवनियाँ, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, डायरी, पत्रक, फोल्डर, स्टीकर, पैम्फलेट, कहानी, समाचार पत्र, लेख आदि। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में भी दृश्य एवं श्रव्य, दोनों माध्यमों को प्रयुक्त किया गया है। इसके साथ ही आदर्श प्रतीकों व आध्यात्मिक स्तर के संचार माध्यम भी उनकी संचारक क्षमता को विशिष्ट और व्यापक बनाते हैं।

आचार्यश्री के संचार माध्यमों से सकारात्मक संचार के जो मूल्य-आदर्श प्रकट हुए हैं, वे हैं—आदर्शनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, चरित्रनिष्ठ, औचित्य व न्यायनिष्ठ, सत्य और संवेदनानिष्ठ तथा मूल्यनिष्ठ संचार।

अध्ययन का षष्ठ अध्याय—'**आचार्य पं० श्रीराम शर्मा द्वारा प्रयुक्त संचार के विभिन्न प्रकारों का प्रभाव**' है। इसमें आचार्यश्री द्वारा प्रयुक्त अंत:वैयक्तिक संचार, अंतरवैयक्तिक संचार, सामूहिक संचार, जनसंचार का विवेचन करते हुए उनकी नवनिर्माण की संचार-प्रक्रिया व उसके सकारात्मक प्रभावों को प्रस्तुत किया गया है।

तप-साधना, पुरश्चरण, ध्यान, जप, प्रार्थना, गायत्री-साधना, यज्ञ, आत्मबोध-तत्त्वबोध आदि पूज्य गुरुदेव के अंत:वैयक्तिक संचार माध्यम हैं। इसी तरह पत्र लेखन, पत्रिका लेखन, अपनों से अपनी बात, व्यक्तिगत संपर्क, जनसंपर्क, कार्यकर्त्ताओं का मार्गदर्शन आदि उनके अंतरवैयक्तिक संचार हैं।

सामूहिक गोष्ठी, मंडल निर्माण, सामूहिक आयोजन, शिविर, बाल संस्कारशाला, युवा मंडल, नारी सशक्तीकरण के समूह आदि समूह संचार के माध्यम तथा जनसंचार के माध्यमों में—सामाजिक आंदोलन, सभा सम्मेलन, दीपयज्ञ, रचनात्मक गतिविधियाँ, ऋषि परंपरा जागरण के अभियान, ज्ञानयज्ञ के आयोजन, शतसूत्रीय कार्यक्रम, संकल्प पत्र आयोजन आदि अनेक माध्यम पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रयुक्त किए गए हैं। इस अध्याय में पूज्य गुरुदेव के सकारात्मक परिवर्तन का स्वरूप एवं उनके प्रयुक्त संचार-माध्यमों की विस्तार से विवेचना है।

तीर्थानां हृदयं तीर्थं शुचीनां हृदयं शुचिः।

अर्थात सब तीर्थों में अंतरात्मा ही परम तीर्थ है और सब पवित्रताओं में हृदय की पवित्रता ही प्रमुख है।

अंतिम अध्याय—'**उपसंहार**' है। इसमें समस्त अध्यायों का सारांश प्रस्तुत करते हुए इस विशिष्ट शोध अध्ययन का निष्कर्ष एवं वर्तमान में इसकी उपादेयता को प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही 'प्रज्ञा संचार मॉडल' के रूप में सकारात्मक परिवर्तन को उत्पन्न करने में समर्थ संचार मॉडल को प्रस्तुत करते हुए इस क्षेत्र की भावी संभावनाओं को स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है।

संचार क्रांति के युग में आचार्यश्री के आदर्श संचार मॉडल, मूल्यों तथा संचार माध्यमों को प्रस्तुत करने वाला यह शोधकार्य अत्यंत उपयोगी, प्रेरक एवं विशिष्ट है। ❑

कर्मों की सिद्धि के पाँच कारण

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की चौदहवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के तेरहवें श्लोक पर चर्चा की गई थी। इस सूत्र में श्रीभगवान कहते हैं कि हे महाबाहो! कर्मों का अंत करने वाले सांख्य सिद्धांत में संपूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए पाँच कारण बताए हैं, इनको तू मुझसे समझ। सांख्य का मूल सिद्धांत समस्त कर्मों का अंत करने का पथ दिखाता है—उस सांख्य सिद्धांत में विहित और निषिद्ध, इस तरह से कर्मों के होने के पाँच हेतु बताए गए हैं, यहाँ भगवान श्रीकृष्ण उसी सिद्धांत की ओर इशारा करते हुए अर्जुन को कहते हैं कि वो उन सिद्धांतों के मर्म को स्वयं भगवान के मुख से सुनें। ऐसा इसलिए कि जो कर्म करने के हेतु को समझ जाता है, वही फिर कर्मफल की इच्छा का त्याग भी कर पाता है।

इस सूत्र में श्रीभगवान एक शब्द का प्रयोग करते हैं और कहते हैं—'कृतान्त' कृतान्त का शाब्दिक अर्थ सिद्धांत है। यहाँ भगवान ने सांख्य दर्शन, सांख्य शास्त्र न कहते हुए सिद्धांत का प्रयोग किया है; क्योंकि यहाँ सांख्य दर्शन की उस धारा की चर्चा की जा रही है, जिसके माध्यम से आत्मा को अकर्त्ता बनाया जाता है। उन पाँच कारणों को, उस सिद्धांत को अच्छी तरह से समझ लेने पर कर्मफल से सर्वथा के लिए संबंध विच्छेद हो जाता है।]

इस श्लोक को कहने के बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

अधिष्ठानं तथा कर्ता, करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा, दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥ *14*॥

शब्दविग्रह—अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पृथग्विधम्, विविधाः, च, पृथक, चेष्टाः, दैवम्, च, एव, अत्र, पञ्चमम्।

शब्दार्थ—इस विषय में अर्थात कर्मों की सिद्धि में (**अत्र**), अधिष्ठान (**अधिष्ठानम्**), और (**च**), कर्ता (**कर्ता**), तथा (**च**), भिन्न-भिन्न प्रकार के (**पृथग्विधम्**), करण (**करणम्**), एवं (**च**), नाना प्रकार की (**विविधाः**), अलग-अलग (**पृथक्**), चेष्टाएँ (और) (**चेष्टाः**), वैसे (**तथा**), ही (**एव**), पाँचवाँ हेतु (**पञ्चमम्**), दैव है (**दैवम्**)।

अर्थात इसमें यानी कर्मों की सिद्धि में अधिष्ठान तथा कर्त्ता और अनेक प्रकार के करण एवं विविध प्रकार की अलग-अलग चेष्टाएँ और वैसे पाँचवाँ कारण दैव या संस्कार है।

श्रीभगवान यहाँ अर्जुन को समझा रहे हैं कि आत्मा को अकर्त्ता बनाने वाले वे पाँच कारण हैं। इन पाँचों में कर्तृत्व या कर्त्तापन के भाव का त्याग हो जाने से कर्मफल से संबंध विच्छेद हो जाता है। ये पाँच कारण हैं—

(1) अधिष्ठान अर्थात शरीर,

(2) कर्त्ता-कर्त्तापन की भावना रखने वाला मनुष्य,

(3) करण-कर्म करने के लिए प्रेरित करने वाली पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, मन, बुद्धि एवं अहंकार,

(4) इन कारणों की अलग-अलग चेष्टाएँ,

(5) स्वभाव तथा अंत:करण के शुभ-अशुभ संस्कार।

अधिष्ठान का अर्थ होता है स्थान। कोई भी कार्य या कर्म करने के लिए यथोचित स्थान की आवश्यकता होती है। खेती के लिए खेत की, शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यालय की, चिकित्सा करने के लिए चिकित्सालय की आवश्यकता होती है।

इसी तरह से भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि कार्य करने के लिए सर्वप्रथम शरीर की आवश्यकता है। इसी शरीर के होने से वो अधिष्ठान निर्मित होता है, जिस पर कर्म किया जाता है।

अधिष्ठान के होने के बाद कर्त्ता की आवश्यकता है। खेत में खेती करने के लिए किसान का होना अनिवार्य है। वैसे ही शरीररूपी अधिष्ठान में कर्म करने के लिए कर्त्तापन की भावना रखने वाले मनुष्य की जरूरत होती है, जो यह सोचे कि 'यह मेरा शरीर है।', 'मैं ही इस कर्म को करने वाला हूँ।' जब जीवात्मा कर्त्ता बनता है, तभी वो भोक्ता बनता है।

सत्यस्वरूप में तो जीवात्मा को कर्मसाक्षी होना चाहिए, परंतु कर्त्तापन का भाव आते ही आत्मा को सुख-दु:ख भासने लगते हैं इसलिए वो कर्त्ता से भोक्ता बन जाता है। इसके उपरांत भगवान कहते हैं—

च पृथग्विधम् करणम्।

करण का अर्थ होता है साधन। जीवात्मा को कर्म की तरफ प्रेरित करने वाले साधन कौन से हैं। हमारी कर्मेंद्रियाँ, ज्ञानेंद्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार आदि। खेत में किसान खेती करना चाहे तो उसे खेती करने वाले साधन यथा बीज, हल, बैल, ट्रैक्टर इत्यादि की जरूरत पड़ती है। यदि मात्र खेत हो और किसान हो तो भी खेती नहीं हो पाएगी। खेती के उपकरणों की भी उतनी ही जरूरत है। इसी तरह से अधिष्ठान और कर्त्ता मात्र के होने से कर्म नहीं होता, कर्म को कराने वाले साधनों यथा करणों की भी आवश्यकता है।

इसके बाद चौथा साधन बताते हुए योगेश्वर कृष्ण कहते हैं कि **च विविधाः पृथक् चेष्टाः** अर्थात कर्म करने हेतु विविध प्रकार की चेष्टाएँ। खेती के लिए खेत हो, किसान हो, खेती के उपकरण हों और किसान यों ही बैठा रहे, हाथ-पैर भी न हिलाए तो क्या खेती हो पाएगी ? जैसे खेती के लिए चेष्टाएँ जरूरी हैं, वैसे ही श्रीभगवान कहते हैं कि कर्मभूमि में भी चेष्टाएँ अनिवार्य हैं तभी कर्म हो पाता है। इन सबके बाद देव या संस्कार का होना भी उतना ही आवश्यक है तब कर्म का, कर्म की सिद्धि का और कर्म के परिणाम का निर्माण होता है। ध्यान से देखें तो कर्म की गति का, कर्म करने के हेतुओं का इससे श्रेष्ठ एवं वैज्ञानिक वर्णन अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता है। (क्रमशः)

दान को पुण्य उसी आधार पर कहा जा सकता है, जब उसको प्रामाणिक माध्यमों से उच्चस्तरीय सत्प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाए।

विश्वविद्यालय परिसर से —239

दिव्य योजना का संवाहक है विश्वविद्यालय

युगद्रष्टा पूज्य गुरुदेव की दिव्य संकल्पना का साक्षात् स्वरूप देव संस्कृति विश्वविद्यालय दिग्भ्रमित समाज को दिशा देने के लिए कुरीतियों के झंझावातों के मध्य प्रकाशस्तंभ की भाँति अविचल खड़ा हुआ है। उन्हीं शक्तिपुंज के दिव्य संरक्षण में इस आदर्श विश्वविद्यालय ने अपनी आज तक की यात्रा को संपन्न किया है। गुरुसत्ता की दिव्य योजना का संवाहक देव संस्कृति विश्वविद्यालय अपनी इसी विलक्षणता के कारण प्रबुद्धों को अपनी ओर आकृष्ट करता है।

इसी क्रम में बीते दिनों श्री कृष्ण सिंहल जी, अखिल भारतीय संपर्क टोली सदस्य और भारत सेवा प्रतिष्ठान के चेयरमैन का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन एवं प्रतिकुलपति जी से भेंट का क्रम संपन्न हुआ। मुलाकात के दौरान शिक्षा, समाज सेवा और पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श हुआ और इन क्षेत्रों में आपसी सहयोग के नए आयामों पर चर्चा की गई।

पिछले दिनों अंतरराष्ट्रीय श्रीराम वैदिक और सांस्कृतिक संघ के एक प्रतिनिधिमंडल का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ जहाँ उन्होंने प्रतिकुलपति जी को पर्थ, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया में 721 फीट ऊँचे विशाल श्रीराम मंदिर और वैदिक बहुसांस्कृतिक परिसर के भव्य उद्घाटन के लिए औपचारिक निमंत्रण दिया।

विगत दिनों प्रोटीन संरचना, जैव रसायन और जैव प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञ डॉ० बलराम सिंह जी का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ, जहाँ उनका स्वागत प्रतिकुलपति जी ने किया। भेंट के क्रम में डॉ० सिंह ने आधुनिक विज्ञान और प्राचीन ज्ञान के बीच संपर्क पर विचारशील चर्चाएँ कीं।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में डॉ० बी० सुरेश जी, जेएसएस विश्वविद्यालय, मैसूर के प्रतिकुलपति और भारतीय फार्मेसी परिषद् के अध्यक्ष का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन एवं प्रतिकुलपति जी से भेंट का क्रम संपन्न हुआ।

नटनी बाँस पर चढ़ते समय ढोल भी बजाती रहती है और गायन भी करती रहती है, किंतु इन सब क्रियाओं को करते हुए भी उसका ध्यान निरंतर अपने पैरों पर ही रहता है। इसी प्रकार गाने-बजाने की भाँति हमें सब काम करने चाहिए और उसके पैरों के ध्यान की तरह हमें परमात्मा में अपना मन लगाए रखना चाहिए।

मुलाकात के दौरान उन्होंने फार्मेसी शिक्षा, स्वास्थ्य देख-भाल और समाज की भलाई के लिए समग्र दृष्टिकोणों पर चर्चा की।

शिविरों के आयोजनों के क्रम में बीते दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित शिक्षक गरिमा शिविर में गोरखपुर से आए 180 शिक्षकों ने भाग लिया। सरकारी और निजी विद्यालयों से उपस्थित हुए शिक्षकों का उद्देश्य शिक्षा के व्यापक दृष्टिकोण को समझना और अपने शिक्षण में इसे आत्मसात् करना था।

प्रतिकुलपति जी ने अपने सारगर्भित संबोधन में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के उद्देश्य और शिक्षा दर्शन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य शिक्षण को केवल किताबी ज्ञान तक सीमित रखना नहीं, बल्कि छात्रों के भीतर छिपी दिव्यता और नैतिक शक्तियों को जाग्रत करना भी है। शिक्षण केवल जानकारी देने का माध्यम नहीं, बल्कि विद्या के रूप में यह वह शक्तिशाली साधन है, जो चरित्र निर्माण और समाजोत्थान की दिशा में कार्य करती है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा अर्जित उपलब्धियों के क्रम में विगत दिनों किट्स यूनिवर्सिटी, भुवनेश्वर, ओडिशा में आयोजित ऑल इंडिया यूनिवर्सिटी गेम्स में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की योग टीम ने शानदार प्रदर्शन किया। विजयी टीम के सदस्यों ने इस सफलता के उपरांत देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट की।

इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने विजयी टीम के सदस्यों को शुभाशीर्वाद देते हुए उनकी उपलब्धियों के लिए शुभकामनाएँ दीं और भविष्य में और ऊँचाइयों तक पहुँचने के लिए प्रेरित किया। इस सफलता के बाद सभी विजेता छात्र-छात्राएँ खेलो इंडिया गेम्स के लिए चयनित हुए।

प्रौद्योगिकी और संस्कृति के भविष्य को पुनर्परिभाषित करने के लिए एक ऐतिहासिक कदम के तहत हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय और मुंबई स्थित प्रसिद्ध मल्टीमीडिया कंपनी, ग्राफिटी मल्टीमीडिया ने एक ऐतिहासिक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए।

यह साझेदारी अगले तीन वर्षों में ए.आई. और मल्टीमीडिया के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास को आगे बढ़ाने पर केंद्रित होगी, जो शैक्षिक और तकनीकी दोनों क्षेत्रों में एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर साबित होगा।

इस सहयोग के तहत, दोनों संस्थाएँ 2डी और 3डी एनीमेशन परियोजनाओं को विकसित करने के साथ-साथ अत्याधुनिक ए.आई. अनुप्रयोगों का अन्वेषण करेंगी। यह पहल न केवल प्रौद्योगिकी नवाचार की सीमाओं को बढ़ाने का लक्ष्य रखेगी, बल्कि उन्नत मल्टीमीडिया तकनीकों के माध्यम से सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर को संरक्षित और बढ़ावा देने का भी प्रयास करेगी।

यह साझेदारी शैक्षणिक सहयोग, पाठ्यक्रम विकास और तकनीकि विशेषज्ञता के आदान-प्रदान को बढ़ावा देगी। अनुबंध को देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी और ग्राफिटी मल्टीमीडिया प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक एवं सीईओ के नेतृत्व में औपचारिक रूप से स्वीकार किया गया।

कार्यशाला आयोजन के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सॉफ्टवेयर प्रोजेक्ट विकास और प्रबंधन समीक्षा और संभावनाएँ विषय पर भी एक विशेष कार्यशाला का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया।

इस कार्यक्रम का आयोजन श्रीराम सॉफ्टवेयर सॉल्यूशंस और देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कंप्यूटर साइंस विभाग द्वारा संयुक्त रूप से किया गया। कार्यशाला की शुरुआत प्रतिकुलपति जी की उपस्थिति में हुई, जिन्होंने प्रेरणादायक उद्घाटन भाषण दिया। उन्होंने प्रौद्योगिकी नवाचार, सॉफ्टवेयर विकास के आधुनिक पहलुओं और प्रभावी प्रबंधन रणनीतियों पर मूल्यवान विचार साझा किए।

छात्रों और संकाय सदस्यों ने कार्यशाला में उत्साहपूर्वक भाग लिया, जहाँ उन्होंने सॉफ्टवेयर विकास, परियोजना प्रबंधन और नवीनतम उद्योग रुझानों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया। इस कार्यक्रम ने न केवल तकनीकी दक्षता को बढ़ावा देने, बल्कि उद्योग और अकादमी के बीच एक महत्त्वपूर्ण सेतु के रूप में भी कार्य किया। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

जीवन के देवता को, आओ तनिक सँवारें (उत्तरार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी के व्याख्यानों की यह विशिष्टता रही है कि उनके उद्‌बोधन गायत्री परिवार के प्रत्येक परिजन को अपने जीवन की दिशा को निर्धारित करने का संकल्प प्रदान करते हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्‌बोधन में वंदनीया माताजी स्मरण दिलाती हैं कि साधक की साधना का अंतिम शिखर उस आत्मदेव से परिचित होना है, जिसके जाग्रत होने पर जीवन की प्रसुप्त संभावनाएँ स्वतः ही मूर्तरूप ले लेती हैं। वे कहती हैं कि वस्तुस्थिति में हमारा जीवन ही हमारे लिए देवता है और जो इसको सँवार लेता है, उसके जीवन में स्वतः ही स्वर्गीय परिस्थितियाँ विनिर्मित हो जाती हैं। हर गायत्री परिजन को वे उसका मूल्य याद दिलाते हुए कहती हैं कि हम लोग हीरे के समान मूल्यवान हैं और अपनी संभावनाओं के ऊपर गर्त डाल देने के कारण अपना मूल्य भूल बैठे हैं। आइए हृदंयगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को..........।

गढ़ने को तैयार हों

अभी मैंने कहा था कि आपको अपने स्वरूप के बारे में नहीं मालूम है, आप हीरा हैं। क्यों हीरा हैं? आपको बनाया गया है। आप स्वयं में कुछ नहीं हैं। कितने जन्मों से आप हमारे साथ हैं और कितने जन्मों तक अभी साथ रहने वाले हैं। आप सही समझना, जब तक हमारा बस चलेगा ठोंक-ठोंक करके पीट-पीटकर आपको दुरुस्त करेंगे।

सुनार होता है न, जेवर बनाता रहता है, गढ़ता रहता है। कभी कुछ बना देता है, कभी कुछ बना देता है और कुम्हार? कुम्हार जाने क्या-क्या बना देता है। खिलौने पर खिलौना, जाने क्या बनाता रहता है। हम भी कुम्हार हैं बेटे। मूर्ति को हम गढ़ना बहुत अच्छी तरह से जानते हैं।

हम आपको गढ़ेंगे। अभी आप अनगढ़ थे पर अब हम आपको गढ़ेंगे। कब? तब गढ़ेंगे, जब आपका भाव समर्पित होगा। समर्पण देश के लिए समर्पण समाज के लिए। आपको अभी समर्पण भाव नहीं आया, यदि हमारे पास समर्पण भाव होता तो, फिर यह नहीं सोचते कि जो भी पूँजी है जो भी हमारे हाथ में है, वो केवल हमारी है, हमारी बीबी की है, हमारे बच्चों की है।

नहीं बेटे, इसमें देश का भी हिस्सा है, इनमें उन गरीबों का भी हिस्सा है, समाज का भी हिस्सा है, इसमें तेरी बहन का भी हिस्सा है, इसमें तेरे बाप का भी हिस्सा है और इसमें तेरी माँ का भी हिस्सा है और इसमें तेरे गुरु का भी हिस्सा है और तेरे मिशन का भी हिस्सा है। सब का हिस्सा है, तेरे अकेले का कहाँ से है। अकेला पैदा हुआ था?

समाज के ऋण से मुक्त हों

बेटे अकेला होता तो अब तक जाने कहाँ पहुँच गया होता। जिस समाज में हो, जिस समाज ने बनाया है, जिस दिन पैदा हुए थे तो नंग-धड़ंग यों ही पैदा हुए थे। तो बेटे किसने बनाया है? समाज ने। जो कपड़ा पहनते हैं हम, कहाँ से पहनते हैं? ये समाज का दिया हुआ है। पैसे आपने दिए तो पैसे कहाँ से आए?

अब लगाइए हिसाब, कौन से छापेखाने में छपे, फिर कागज कहाँ हुआ, फिर वो मशीन कहाँ से पैदा हुई, कागज कहाँ से आया? फिर उसकी लिंक बनाइए। फिर ये कपड़ा कैसे बुना गया? सूत कहाँ से आया? फिर इसकी रूई कहाँ से आई? ज़रा हिसाब तो लगाइए कि जो आप धोती पहने बैठे हैं, जो कुरता पहने बैठे हैं, इसमें कितने लाखों लोगों का श्रम लगा हुआ है। तो उस समाज का कोई ऋण नहीं है आपके ऊपर? आपके ऊपर ऋण है, उस ऋण को आप चुकाइए।

बेटे, आप बगैर चुकाए जाएँगे तो मैं क्या कहूँ कि अगले जन्म में कौन बनेंगे, मालूम नहीं कौन बनेंगे? बनेंगे जरूर; कह दूँ कि नहीं कहूँ, बता? कह देना चाहिए, गधा बनोगे। गधा बनोगे बेटे और फिर गुरुजी पीछे से लगाएँगे डंडा। ऋण है न तुम्हारे ऊपर, बनो गधे। तुमने इस जन्म में क्यों नहीं सोचा?

बेटे, जब तुमको ला करके यहाँ खड़ा कर दिया है और बना रहे हैं, फिर भी तुम नहीं चेत रहे हो, फिर भी नहीं सँभल रहे हो, तो फिर कब सँभलोगे? तो बनने के लिए तैयार हो जाओ। तो बेटे उसी दृष्टि से आप सोचना और वास्तव में सच्चे इनसान बनना है, ब्राह्मण बनना है तो आप उस पंक्ति में शामिल हो जाइए, जहाँ कि अभी संकेत किया गया है।

नारी को आगे बढ़ाएँ

बेटे नारी को भी आगे करिए। यह किसकी संकीर्णता है? बेटे यह नर की संकीर्णता है। यदि वह चलाए तो नारी आगे न चले? अरे बेटा! कैसे नहीं आगे चलेगी, जरूर चलेगी। वो तो ऐसे चलेगी कि बिलकुल छाया के तरीके से आपके पीछे-पीछे चलेगी। आपने तो कभी उसका विश्वास नहीं खरीदा, आपने कभी उसका प्यार नहीं पाया। कभी प्यार दिया नहीं है तो लोगे कहाँ से तुम? कभी भावनाएँ आपने दी नहीं हैं, तो आप लेने के भी हकदार नहीं हैं। आप इनको प्यार दीजिए, आप इनको सम्मान दीजिए, आप इनको आगे-आगे धकेलिए, संकीर्ण मत बनिए।

नर और नारी दोनों एक समान हैं। आधे को लकवा मार रहा है और आधा जाने स्वस्थ है, सानंद फिर रहा है या नहीं? आधे अंग को लकवा क्यों मारेगा? इनको आगे आने दीजिए। आप से नहीं बनाया जाता है तो हम बनाने के लिए मौजूद हैं।

आप तीन-तीन महीने के लिए इनको भेजिए और तीन महीने में हम इनको बढ़िया क्वालिटी की लड़कियाँ बना देंगे। तीन महीने में बना देंगी? बिलकुल, तीन महीने में बना देंगे, फिर देखना। अरे माताजी आपने ये क्या कह दिया, अब तो ये ऐसी हो जाएँगी। उन बच्चों को जो छह-छह हमने पैदा कर दिए हैं, उनका क्या होगा?

नर और नारी एक समान

अरे बेटा, तो तीन महीने तू ही सेवा करके देख ले जरा, तुझे भी तो पता लग जाए। जब से ये पैदा हुए हैं तब से बेचारी वही मर रही है, खप रही है। रात को जागती है, रात को नींद पूरी नहीं होती, दिन में घर का सारा काम करना पड़ता है। तो तू ही ज़रा रोटी बनाकर देख कि कैसी बनती हैं। भले

से ताजिया बनेगी, भले से हिंदुस्तान का नक्शा बनेगा, करके देख ज़रा।

बना, हिम्मत कर। जो माँ सारी जिंदगी कलेजे से लगा सकती है तो बाप में इतनी हिम्मत नहीं है कि ये भी करे कि तीन महीने अपने बच्चों को सँभाले, तो दाल-आटे का भाव मालूम पड़ेगा। मैं तो सबसे कहूँगी बेटियो, तुम अपने-अपने पति को खाना बनाना सिखाना, कहना माताजी ने कहा है कि खाना बनाना सीखो।

यहाँ इन्होंने थाली माँजना तो सीख लिया है, पर अभी इन लोगों को खाना पकाना नहीं आता है। खाना पकाना सिखाओ, इनको झाड़ू लगाना सिखाओ, उनको कप धोना सिखाओ। यहाँ इनको कपड़े धोने भी आ गए हैं । इनको घर-गृहस्थी का हर काम सिखाओ।

इक्कीसवीं सदी-नारी सदी

ये वैसे नहीं बाज आएँ तो यहाँ अब आप खाना पकाओ। हमने कह दिया है कि इक्कीसवीं सदी जो आ रही है वो महिलाप्रधान है, नारीप्रधान है। अब नहीं आने दोगे तो वो अपना हक माँगेंगी, सो बेटे आप सँभल जाइए ।

विदेश में एक ऐसा देश है, नाम तो उसका अब मुझे याद नहीं है, लेकिन वहाँ जो मर्द हैं वो तो बुर्का पहनते हैं और महिलाएँ बाहर काम करती हैं। ठीक बात है, अब तक आपने हुकूमत की अब ये आपके ऊपर हुकूमत करेंगी। खैर रहने दो, यह बात तो ज़रा ठीक नहीं है, यह मैं किसी भी लड़की को नहीं सिखाऊँगी, न मैंने कभी जीवन में सीखा है, न मैं किसी और को सिखाऊँगी।

यह शिक्षा मैं किसी को नहीं दूँगी। मैं तो यह शिक्षा दूँगी कि यह त्याग की मूर्ति है, यह समर्पण की मूर्ति है, इसको आगे आने दीजिए। नारी को नारी का काम करने दीजिए। नर को नर का काम करने दीजिए। नर, नर में काम करें, नारी, नारी में काम करें। नहीं साहब! हम तो संकीर्ण हैं, हमारी औरत घर से बाहर नहीं जाएगी। हमारी लड़कियाँ थीं, जिन्हें हमने अपने पास रखा था।

इन्हें एम० ए० करा करके हमने बाहर उनकी शादी की। किसी को डॉक्टर, कोई इंजीनियर, कोई कमबख्त ऐसे संकीर्ण मिल गए कि लड़कियों को बाहर नहीं जाने देते। हमारी एकाध लड़की तो दबंग है, तो उसका पति ठीक है। उनने कहा कि मैं तो गुरुजी का काम नहीं कर सकता, पर तू कर। बाकी की तो लड़कियों को जैसे पति, परिवार मिलते हैं, सोई घर का चौका-चूलहा मिल गया। घर से नहीं निकलने देते। जबकि ऐसी लड़कियाँ थीं कि कहीं भी हम उनको छोड़ दें तो ऐसी वक्ता और कर्मकांड कराने वाली और संगीत में इतनी बढ़िया होशियार थीं कि आपसे क्या कहें।

उनकी सारी-की-सारी होशियारी बच्चों में चली गई, बच्चा पैदा करने में और घर की गृहस्थी का भार ढोने में चली गई। नहीं बेटे, इनको बैल मत समझिए। बैल का काम इनसे मत लीजिए। वो भी उतनी ही हकदार हैं। इनको आगे आने दीजिए। नारी को आगे आने दीजिए। वे आपकी बराबर की हिस्सेदार हैं, बराबर का काम करेंगी।

मैं उस दिन कह रही थी कि बेटे हम और गुरुजी एक और एक ग्यारह हैं और एकदूसरे के लिए समर्पित हैं, एकदूसरे के लिए हम प्राण देते हैं। अभी मैंने कहा न कि हम दिखने में आपको दो शरीर दिखाई पड़ते हैं, लेकिन प्राण एक ही हैं। आप भी ऐसे ही बनिए कि एक और एक ग्यारह बनकर के कार्य करें। एक और एक ग्यारह बनें तब तो हमारे साथ जुड़ने की शान है कि हाँ साहब! किसी के साथ जुड़े थे। गुरुजी-माताजी ने हमको

भी इस लायक बना दिया, नहीं तो लाज के मारे घर में बैठी रहती थी।

गुरुदेव ने बदला जीवन

बहुत दिन हो गए एक महिला थी, वो आ करके रोई। गुरुजी! क्या करूँ? मुझे तो ऐसे आदमी से पाला पड़ गया है कि यह राक्षस न तो कहीं निकलने देता है और न कुछ करने देता है। खूब शराब पीता है और शराब पीकर मगरमच्छ-सा पड़ा रहता है। बकरा खाता है, मीट भी खाता है। तो गुरुजी ने एक बात कही। वो राजपूत घराने की थी।

उसने कहा कि हमारे राजपूतों में तो परदा नहीं खोलते। तो गुरुजी ने कहा कि भाड़ में गए राजपूत और ऊपर से गए उसके घरवाले। तू उठा घूँघट और चल अपने खेत में जा। नहीं तो बेटी तू बरबाद हो जाएगी। तेरी इतनी बड़ी हवेली है। वो रानी थी। उन्होंने कहा कि तेरी इतनी बड़ी हवेली और इतनी सारी तेरी जायदाद है, वो सारा चौपट कर देगा। लड़की ने गाँठ बाँध ली। उन्होंने कहा कि वो भी शिष्य था, अब वो धमका नहीं सका और लड़की आगे आ गई।

सारे-के-सारे जाने कितने तो मुकदमे चल रहे थे, सो सब लड़की ने अपने जिम्मे ले लिए और सारा खेती-बारी से ले करके और मकान-जायदाद तक का सारा काम अपनी मुट्ठी में, अपने हाथ में ले लिया।

बनिए और बनाइए

बेटे हम बनाने के लिए मौजूद हैं, लेकिन आप बनिए और उनको बनाइए। बेटे, आज आपकी विदाई है और आज आप जा रहे हैं। क्या सचमुच आपकी विदाई है? नहीं, सचमुच विदाई नहीं है। तो सच क्या है? सच यह है कि शरीर से आप जाएँगे, लेकिन अपने मन को आप यहाँ रख जाना। माताजी! मन किसके हवाले छोड़ जाएँ? बेटे, अपने गुरु के हवाले और अपनी माँ के हवाले। अपनी माँ के इस आँगन में, शांतिकुंज के प्रांगण में ही आप खेलना। छोटा बच्चा खेलता है तो माँ प्रसन्न होती है और माँ को देखकर बच्चा प्रसन्न होता है और उसका वजन दूना बढ़ जाता है। लक्ष्य को याद करना।

बेटे! आपको कोई दु:ख, कष्ट, कठिनाई होगी तो हम आपकी मदद के लिए तैयार हैं। आपके हर संकट को दूर करने के लिए हम तैयार हैं, पर थोड़ी-सी हिम्मत आपको दिखानी पड़ेगी। आपसे हमारी अपेक्षा है। आप हमारी अपेक्षा पूरी करिए और जो आप अपेक्षा लेकर के आएँ हैं, आपकी अपेक्षा को हम पूरा करेंगे।

आप यह सोचकर आए हैं कि इतना बड़ा दाता है, इससे हमको कुछ मिलेगा। बेटे, आपकी झोली भरपूर भरेगी। हम दरिद्र किसी भी बच्चे को नहीं छोड़ेंगे। तो माताजी हमको कितना-कितना रुपया मिलेगा?

अरे बेटे, माताजी के पास तो रुपये हैं ही नहीं, तुझे कहाँ से रुपया माताजी दे देंगी? एक नए पैसे का कोई बैंक बैलेंस नहीं है, चाहे तू जहाँ देख आ। तो तुझे पैसे कहाँ से देंगे? लेकिन एक दौलत हम देंगे और वो दौलत देंगे मानवता की, और वो देंगे हम प्रेम की। जो प्रेम हमने सीखा है, उस प्रेम को सर्वत्र आप बाँटिए।

समाज में आज जहाँ छुआछूत के रूप में मानव, मानव को काटता ही चला जाता है। ये कौन हैं? ये फलाने हैं, ये फलाना संप्रदाय है, ये ढिमाका संप्रदाय है। आग लगा दो संप्रदाय में, कोई संप्रदाय नहीं है, एक ही संप्रदाय है और वो है मानव संप्रदाय और कौन-सा संप्रदाय होता है?

संतों का एक ही संप्रदाय होता है और वो होता है मानवता का। इस प्रेम को आप लेकर के

जाइए। बेटे हमारे अंदर एक ही दौलत है। वो हमारे अंदर है प्यार। इस प्यार के सहारे को आप ले करके जाना। तो बेटे आपका गृहस्थ जीवन भी, पारिवारिक जीवन, दांपत्य जीवन और जहाँ समाज में आप बैठे हैं वो समाज वाले भी यही कहेंगे कि हाँ किसी से जुड़े थे।

हमारा सिर झुकने न देना

हाँ साहब! शांतिकुंज में कोई गुरुजी थे और उनसे ये जुड़े हुए थे, देखो कैसे कमाल के हैं। बेटे, हमारा सर नीचा मत होने देना, हमारा सर ऊँचा रहने देना और हम चाहते हैं कि जिस ऊँचाई तक हम पहुँचे हैं उसी ऊँचाई तक आपको भी हम लेकर के जाएँ। आपको वही संपत्ति हम देंगे, जो संपत्ति जन्म-जन्मांतरों तक काम आती है। ये संस्कारों की संपदा हमारे जन्मों तक काम देती है। इस जन्म में भी काम देती है, अन्य जन्मों में भी काम देती है। आपको वो संस्कार हम देंगे।

आपको बल देंगे, आपको शक्ति देंगे, आपको सामर्थ्य देंगे। इससे ज्यादा और आपको क्या दे दें बेटे, बताइए कि हमको अमुक चीज की जरूरत है। पैसे की जरूरत है? जिस दिन इस दुनिया से जाएगा तो तेरे साथ पैसा जाएगा क्या? पैसा नहीं जाएगा। बेटे कहते हैं कि मुट्ठी बाँधकर आया बंदे, हाथ पसारे जाएगा, तो बेटे मुट्ठी बाँध के आते हैं, हाथ फैलाकर जाते हैं। न हमारा पैसा साथ जाता है और न वो, जिसको हम कुटुंब और परिवार कहते हैं। वो परिवार भी हमारे साथ नहीं जाता।

बेटे, हम अकेले आए हैं और अकेले ही जाएँगे तो क्यों हम अपना जीवन बरबाद करें? जो आपने कहा है कि हमारे बच्चे हैं, हमारी औरत है, हमारी माँ है, हमारी बहन है। ये छोटा-सा कुटुंब है, इस कुटुंब के लिए ही पैदा हुए हैं क्या आप लोग? इस कुटुंब के लिए पैदा नहीं हुए हैं, आप निकलिए, इस दलदल में से निकलिए, इस कीचड़ में से निकलिए।

हमें आपसे बहुत महान कार्य कराना है और गुरुजी ने जो सोचा है और जो उत्तरदायित्व आपको सौंपने वाले हैं ,उसके लिए तैयार हो जाइए। जो अभी उन्होंने कहा था कि भाई हम तो अपना डेरा समेट रहे हैं। हाँ बेटे, अपना डेरा समेट रहे हैं, इसमें कोई शक नहीं है। समेटना अर्थात अपनी उन जिम्मेदारियों को आपको देना चाहते हैं तो फिर आप क्या करेंगी माताजी? अरे, आपको भी बुढ़ापा आ गया माताजी?

गुरुजी पर आ गया, आप पर भी आ गया। नहीं बेटे, यह बुढ़ापा तो एक कलंक है। बुड्ढा होगा तू और तेरे घरवाले, हम तो बुड्ढे न अब हैं, न पहले थे, कभी नहीं होंगे। मैं तो और काम कर रही हूँ। जब और काम करना है तो उसके लिए शक्ति की जरूरत है की नहीं? एकांत में बैठने का मतलब यह था कि आप के लिए शक्ति उपार्जित की जाए और आपको उसे दिया जाए। जब होगा नहीं तो, हम दे ही नहीं सकते। जब हमारे पास नहीं होगा तो हम आपको देंगे क्या, कुछ नहीं मिलेगा।

हम आपके माता-पिता हैं

बेटे! आप पिता को कमाने दीजिए और फिर आप लीजिए। उसी शक्ति के लिए उन्होंने एकांतवास लिया है। शायद आपको प्रणाम न मिले, यह कह नहीं सकती बेटे। आपका सौभाग्य है किसी को बुला लें तो बुला लें, लेकिन आगे आपको किसी को शायद नहीं भी बुलाएँ। तो आपकी माँ मौजूद है, जो आप पिता से कह सकते थे, वही आप माँ से कह सकते हैं। माँ तो और भी जरा संवेदनशील होती है।

कल कितने ही लड़के आए जो कि परसों भी प्रणाम न कर सके थे और बेचारे इसी उद्देश्य से

आए थे, पर हमने कहा नहीं इनका तो ड्यू है। आपको झल्लाना हो तो मुझ पर झल्ला लीजिए, पर आप तो बैठ ही जाइए एक बार। तो फिर और भी घुस पड़े दो-दो, तीन-तीन बार, जो घुस पड़े तो घुस पड़े। तो बेटे अभी तुम्हारी माँ मौजूद है, आपका पिता मौजूद है।

आपको बल मिलेगा, आपको शक्ति मिलेगी, आपको सामर्थ्य मिलेगी। आपको भावनाएँ मिलेंगी, आपको दिशा भी मिलेगी। विचारों की जो संपत्ति है, विचारों की संपत्ति हमने जो पाई है, बेटे वो विचार हम आपको देंगे। हमने तपश्चर्या से जो सीखा है, जो तप किया है, वो सारे राष्ट्र के लिए किया है, सारे विश्व के लिए किया है, वही तप हम आपको सिखाना चाहते हैं। तो बेटे जो तप हमने किया है, इसमें से थोड़ा-सा हिस्सा तो बँटा लो और तुम भी तपस्वियों की लाइन में खड़े हो जाओ।

सादा जीवन-उच्च विचार

आपको पीले वस्त्र क्यों पहनाते हैं ? इसलिए पहनाते हैं कि और किसी को देख करके आपके मुँह में पानी न भर आए। ऐसा न लगे कि यह तो ऐसा टेरेलीन, टेरीकॉट पहने और हम तो ऐसे ही सूती पहने फिर रहे हैं। नहीं बेटे ऐसा ही पहन, पीला ही पहन। ये सादगी का चिह्न है, यही पहनना पड़ेगा।

आप अपने घर में यही परिपाटी डालिए। फालतू खरच हम नहीं करेंगे। फालतू खरच करने में कोई शान है क्या ? हम बीबी-बच्चों को कस करके रखेंगे। कस करके रखने का मतलब भूखे मारना नहीं है, वरन यह अर्थ होता है कि लिमिट में जितना चाहिए, उतना ले लीजिए। अंधाधुंध वो तुम्हारे लिए ही खरच करे और समाज के लिए कुछ नहीं करेंगे ? नहीं बेटे, उसके लिए भी करना चाहिए।

बेटे! मैं आपसे विदाई के लिए कह रही थी कि आप आज विदा हो रहे हैं। कैसे-कैसे आप कष्ट उठा करके इतनी दूर से आए, हम जानते हैं। आपकी भावनाओं की हम इज्जत करते हैं। हम कसते तो हैं, कई बार कड़वी बात भी कह देते हैं, गुरुजी ने भी कई बार कहा है। मैं किसी से कभी भी नाराज नहीं होती। उदाहरण है जब से मैं आई हूँ, किसी ने मेरी नाराजगी नहीं सुनी होगी। नाराज होना मुझसे आता ही नहीं है, पर कभी किसी आवेश में मैंने कुछ कह भी दिया होगा तो आप बुरा मत मानना।

माँ का अधिकार

मैं माँ हूँ तुम्हारी और माँ हूँ तो मेरा आप पर अधिकार है। आप ऐसे नहीं सुनेंगे तो मैं जरा आपको डाँट के भी कहूँगी, आपकी मिन्नतें भी करूँगी, आपको पुचकार के भी कहूँगी। कहूँगी बेटा, देख मेरी इस बात को तू मान जा, नहीं मानेगा तो मुझे कड़क से भी कहना पड़ेगा। क्योंकि माँ हूँ न आपकी, इसलिए मुझे कहना पड़ेगा।

आप बुरा मत मानना। अब आप विदा हो रहे हैं, हमें भी बुरा लग रहा है। आप इतनी-इतनी दूर से आए, बेचारे रात भर चले, कोई तो हवाई जहाज से आया, कोई कहाँ से आया, कोई कहाँ से आया। हम आप लोगों को जरा भी कोई सुविधा न दे सके। कहाँ सुविधा दे सके ? कोई यहाँ पड़ा है, कोई बरामदे में पड़ा है, कोई कहाँ पड़ा है। बेटे हम क्या करें, मजबूर हैं। आखिर यह आपका घर ही तो है, आपके ही घर में ही तो सब कुछ हो रहा है, तो बताओ सुविधा देगा कौन ? तुम ही हो करने वाले और तुम ही चाहे सुविधा पा जाओ, चाहे मत पा जाओ।

आप ही अपने दिल को जरा चौड़ा करिए, हम इसमें क्या कर सकते हैं, लेकिन बेटे, हम

आपकी भावनाओं को और आपकी निष्ठा को परखते रहते हैं। आप सब निष्ठावान हैं, आप सब भावनाशील हैं, आप बहुत आस्थावान हैं, बहुत श्रद्धालु और सिद्धांतवादी हैं। आपके अंदर आस्था है, भावना है, निष्ठा है, श्रद्धा भी आपके अंदर है, हम ये नहीं कहते की आपकी श्रद्धा नहीं है। बेटे मैंने कहा भी था कि श्रद्धा का मतलब होता है—समर्पण। इसी समर्पण की थोड़ी-सी कमी है। भगवान वो भी पूरी करेगा।

हम नाउम्मीद नहीं हैं। नाउम्मीद न कभी हुए हैं, न होते हैं और न कभी भविष्य में होंगे। जब तक आप चलेंगे, तब तक हम आपको चलाते रहेंगे। भरसक हमारी यही कोशिश होगी कि हम हर बच्चे को ताकत और जुर्रत दें। किसकी? समाज में फैली हुई जो विकृतियाँ हैं, इनके लिए जेहाद बोलने की जरूरत है। इन विकृतियों को हटाना है।

इन विकृतियों को आप नहीं हटा पाएँगे? आप जिस मिशन से जुड़े हैं, जो विचार आपने पाए हैं, तो आपका यह? और कर्त्तव्य हो जाता है कि आप लोग अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करें। इसी के लिए आप लोगों को बुलाया था।

इतनी-इतनी दूर से कितने-कितने कष्ट उठा करके आप आए हुए हैं, यह चिंतन करते हमारी आँखों में पानी आ जाता है कि जरा-सा एक पत्र डाला है और बेचारे कहाँ-कहाँ से भागे आए हैं।

बेटे आप हमारे प्राणों से ज्यादा प्रिय बच्चे हैं, प्राणों से ज्यादा प्यारे हैं, पर थोड़ा-सा आगे आप चलना, बस, यही हमारी उम्मीद है। बस, इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात खतम करती हूँ। भगवान आपका कल्याण करें।

॥ ॐ शांति ॥

लिंची कन्फ्यूशियस के समकालीन संत थे और उनके सम्मान के पात्र भी। वे सदा कहा करते थे कि भगवान सिर्फ लिंची की प्रार्थनाएँ सुनता है। कुतूहलवश कन्फ्यूशियस का एक शिष्य लिंची से मिलने जा पहुँचा। उसने लिंची से उनकी दैनिक दिनचर्या के संदर्भ में पूछा।

लिंची हँसे और बोले—"मैं साधारण किसान हूँ, दिन खेत में गुजर जाता है; जब भूख लगती है खा लेता हूँ; जब नींद आती है सो जाता हूँ। भगवान की प्रार्थना क्या करनी, सब तो उसी का है।" शिष्य बड़ा निराश हुआ। उसने यह घटना कन्फ्यूशियस को सुनाई।

कन्फ्यूशियस बोले—"मूर्ख! जिसका जीवन ही भगवान की प्रार्थना बन गया हो, उसे अलग से आडंबर करने की क्या आवश्यकता पड़ेगी। परमात्मा अंतरात्मा की आवाज सुनता है—घंटे, घड़ियालों की नहीं।"

साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला

मनुष्य-आकृति वही, प्रकृति नई

मनुष्य—आकृति वही, प्रकृति नई—यह नवयुग का नवीन सत्य होगा। प्रकृति में प्रकाश, धरती की प्रकृति के साथ मनुष्य की प्रकृति में अनेकों परिवर्तन लाएगा। मनुष्य न केवल स्वयं बदलेंगे, बल्कि उनके आस-पास का परिदृश्य एवं परिवेश बदलेगा। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने इसकी चर्चा जनवरी, 1987 ई० के 'कुंडलिनी जागरण अंक' में की है। इस विशेष अंक के लेख 'राष्ट्र कुंडलिनी की परिवर्तन-प्रक्रिया' में उनके इस उद्घोष को पढ़ा जा सकता है।

इस लेख की पंक्तियों में वे लिखते हैं— 'मनुष्य की आकृति तो वैसी ही रहेगी, जैसी अब है, पर अगली शताब्दी में—इसके अंत तक उसकी प्रकृति असाधारण रूप से बदल जाएगी।' यह सब धरती की प्रकृति में होने वाले परिवर्तन के साथ स्वतः होता चला जाएगा।

इसी अंक के एक अन्य लेख में वे लिखते हैं— 'क्या यह संभव है ?' इस प्रश्न के उत्तर में इसी लेख के अगले परिच्छेद में उनके शब्द हैं—'पृथ्वी अक्सर अपनी धुरी का स्थान बदलती रहती है, पर यदि उसका सही पता लग जाए और कोई मनुष्य वहाँ पहुँचकर उसे एक घूँसा कसकर मार दे तो पृथ्वी अपनी कक्षा बदल देगी और जिस प्रकार अब 365 दिन का वर्ष होता है, 24 घंटे का दिन होता है, वैसा न रहेगा और न्यूनाधिक हो जाएगा। इतना ही नहीं, तापमान में भी घट-बढ़ होगी और स्थिति अब की अपेक्षा भारी उलट-फेर में फँस जाएगी।'

विश्व राष्ट्र की कुंडलिनी जागरण के प्रभाव जिसकी नकारात्मक-विषाक्तता 2025 ई० के अंत से काफी कुछ समाप्त होती दिखने लगेगी। इस लिहाज से 2024 ई० से 2026 ई० तक के तीन वर्ष धरती, धरतीवासियों एवं मनुष्य की प्रकृति एवं नियति के लिए अतिशय महत्त्वपूर्ण होंगे। इन तीन वर्षों में भले ही सामान्य नेत्रों की सामान्य दृष्टि से कुछ भी विशेष हुआ न दिख पड़े, परंतु भविष्य में होने वाले अनेकानेक परिवर्तनों का बीजारोपण इन्हीं दिनों किया जाएगा।

सामान्य दृष्टि से बीज बोना, खेतों में अन्न के दाने मिट्टी में बिखेरना—घर की अन्न संपदा

सामान्य दृष्टि से बीज बोना, खेतों में अन्न के दाने मिट्टी में बिखेरना—घर की अन्न संपदा को मिट्टी में मिलाने जैसा दिखता है, पर ऐसा होता नहीं है। धरती की प्रकृति एवं धरतीवासियों के साथ मनुष्य की नियति के लिए यह समय नवयुग के नवीन सौभाग्य के बीजारोपण से कम नहीं है।

को मिट्टी में मिलाने जैसा दिखता है, पर ऐसा होता नहीं है। धरती की प्रकृति एवं धरतीवासियों के साथ मनुष्य की नियति के लिए यह समय नवयुग के नवीन सौभाग्य के बीजारोपण से कम नहीं है। गायत्री परिजनों के लिए तो ये तीन वर्ष गायत्री-साधना के त्रिवर्षीय अनुष्ठान जैसे हैं। इन्हें इसी रूप में देखा जाना चाहिए।

गुरुदेव के शब्दों में—'इन दिनों की उथल-पुथल के पीछे निकट भविष्य में सुखद संभावनाओं का आगमन आँकना चाहिए।' इस समय के बाद ही शनैः-शनैः इन परिवर्तनों का आरंभ होगा। जो अभी किसी की कल्पनाओं में भी नहीं है, वह वर्ष—2026 के बाद के 24 वर्षों में साकार होता दिखाई देगा।

इस स्थिति को बताते हुए गुरुदेव के शब्द मंत्र हैं—'विश्व की, राष्ट्र की कुंडलिनी जाग्रत होने का प्रभाव इस रूप में देखा जा सकेगा कि उससे जड़ पदार्थ, जीवधारी, मनुष्य एवं परिस्थितियों के प्रवाह प्रभावित होंगे। मृतिका की उर्वरता बढ़ेगी। खनिजों के भंडार तथा उत्खनन का अनुपात बढ़ जाएगा। धातुएँ मनुष्य की आवश्यकताओं से अधिक ही उत्पन्न होंगी। खनिज तेलों की कमी न रहेगी। रसायनें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होंगी। वृक्ष-वनस्पतियों को उगाने के लिए मनुष्य को अधिक प्रयास नहीं करना पड़ेगा।'

'ये प्रकृति की हलचलों से उपजते और बढ़ते रहेंगे। वनौषधियाँ फिर प्राचीनकाल की तरह इतनी गुणकारी होंगी कि चिकित्सा के लिए बहुमूल्य उपचार न ढूँढ़ने पड़ेंगे। उपयोगी प्राणी बढ़ेंगे और दीर्घकाल तक जीवित रहेंगे। हानिकारकों की वंशवृद्धि रुक जाएगी और वे जहाँ-तहाँ ही अपना अस्तित्व बचाते दिख पड़ेंगे। जलवायु में पोषक तत्त्व बढ़ेंगे और वे प्रदूषण को परास्त कर देंगे। मलिनता घटेगी और शुद्धता अनायास ही बढ़ेगी। प्रकृति प्रकोपों के समाचार यदा-कदा ही सुनने को मिलेंगे। बाढ़-सूखा, अकाल-महामारी, भूकंप, ज्वालामुखी विस्फोट, ओलावृष्टि, टिड्डी इत्यादि हानिकारक उपद्रव प्रकृति के अनुकूलन से सहज ही समाप्त होते चले जाएँगे।'

यह तो हुआ धरती की प्रकृति में होने वाले परिवर्तन का सत्य, अब मनुष्य की प्रकृति-परिवर्तन के बारे में परमपूज्य गुरुदेव का शब्दोच्चार है—'दुर्व्यसन हर किसी को अरुचिकर लगेंगे और न उनमें जनसाधारण की प्रीति रहेगी, न प्रतीति। चोरी, ठगी, निष्ठुरता, क्रूरता, पाखंड, प्रपंच—अपने लिए अनुकूलता न देख पाएँगे, न अवसर प्राप्त कर पाएँगे। अधिकांश के जब गुण, कर्म, स्वभाव में सज्जनता भरी होगी, तो दुष्ट-दुर्जनों की करतूतें न तो बन पड़ेंगी और न सफल होंगी।'

'मक्खी, मच्छर, सड़न-कीचड़ से पनपते हैं। अनाचार भी तभी फूलते-फलते हैं, जब उन्हें रोका-टोका नहीं जाता। जब पग-पग पर उन्हें विरोध, प्रतिरोध, दमन, निंदा, भर्त्सना और असहयोग का सामना करना पड़ेगा; तो उनकी दाल गलने ही कैसे पाएगी ? जब प्रचलन सज्जनता का होगा, तो दुष्टता को अपनी घात लगाने के लिए न तो अवसर मिलेगा, न साहस बन पड़ेगा।' संक्षेप में कहें, तो धरती की ही भाँति—मनुष्य की प्रकृति में भी नकारात्मकता का निषेध एवं सकारात्मकता के सत्कार की स्थिति सब तरफ दिखाई पड़ेगी।

ऐसा होगा धरती की कक्षा, परिवर्तन के कारण, जिसका समय 2024 ई० से 2026 ई० तक के तीन वर्षों का है। यह परिणाम है—इस समय के ठीक चालीस वर्ष पहले 1984 ई० से 1986 ई० के तीन वर्षों में संपन्न की गई विशेष तप-साधना का, जिसे पूज्य गुरुदेव ने इन वर्षों में शांतिकुंज में संपन्न किया था।

वह समय वर्ष—1984 ई० से 1986 ई० के तीन वर्षों का था, जिसमें पूज्य गुरुदेव ने वंदनीया माता जी के साथ एकांत कक्ष में अपनी यह साधना संपन्न की थी। जबकि यह समय वर्ष 2024 से 2026 के तीन वर्षों का ठीक वैसा ही है, जिसमें हम सब शिष्य-साधकों को मिलकर सामूहिक रूप से अपने हिस्से का तप पूरा करना है, साधना संपूर्ण करनी है। अपना यह प्रयास श्रीराम के रीछ-

वानरों एवं श्रीकृष्ण के ग्वाल-बालों जैसा है, जो रावण और इंद्र के अभिमान को चूर्ण-विचूर्ण करने का निमित्त कारण बने थे।

धरती और मनुष्य की प्रकृति में होने वाले इस परिवर्तन में अपना प्रयास—बस, विश्वास बनाए रखना है; क्योंकि परिवर्तन तो ईश्वरीय विधान से होने वाला है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिससे दिन-रात होते हैं। समयानुसार इसमें थोड़ी बहुत हेर-फेर होती रहती है। कभी दिन थोड़े बड़े होते हैं और रातें थोड़ी छोटी होती हैं। कभी-कभी यह स्थिति बदल जाती है, रातें बड़ी होती हैं और दिन छोटे होने लगते हैं।

यही स्थिति ऋतुओं की होती है। पृथ्वी वर्ष भर में सूर्य के चारों ओर अपनी धुरी पर घूमती हुई चक्कर लगाती है। इसका कौन-सा हिस्सा सूर्य के सामने पड़ता है और कौन-सा नहीं—इसी हिसाब से धरती के अलग-अलग हिस्सों के मौसम व ऋतुएँ बदल जाती हैं। इसमें हममें से किसी का कोई निजी या सामूहिक प्रयास नहीं होता, लेकिन हममें से हर कोई इसका चाहे-अनचाहे अनुभव अवश्य करता है। हममें से कोई भी न तो धरती को उसकी धुरी पर घुमाता है और न ही उसे पकड़कर सूर्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने के लिए विवश करता है, लेकिन हमारे न करने पर भी यह होता अवश्य है और यही दिन-रात एवं ऋतु-परिवर्तन का आधार बनता है।

हमारे न करने पर भी दिन-रात के परिवर्तन एवं ऋतु-परिवर्तन होते हैं। बस, हमें इनके अनुरूप अपनी जीवन-व्यवस्था बनानी पड़ती है। ठीक यही स्थिति युग-परिवर्तन की भी है। यह भी ऋतु-परिवर्तन की तरह आने वाले वर्षों में हम सबके सामने घटित हुए बिना न रहेगा। इसमें धरती की प्रकृति के साथ मनुष्य की प्रकृति भी अनायास, अनपेक्षित, अनचाहे, अप्रयास ही बदलने लगेगी और ऐसा धरती और मनुष्य पर दैवी प्रकाश पड़ने के कारण होगा। मनुष्य केवल देह की स्थूल संरचना नहीं है। इसमें सूक्ष्मशरीर के सात चक्र एवं नौ ग्रंथियों के साथ अनेकों सूक्ष्म उपत्यिकाएँ भी शामिल हैं। इनमें से प्रायः सभी अभी दैवी प्रकाश से वंचित एवं आसुरी अँधियारे से घिरे हैं।

लेकिन वर्ष—2026 ई० के पश्चात इस स्थिति में शनैः-शनैः बदलाव आने लगेगा। धरती, धरतीवासी एवं हम सभी मनुष्य दैवी प्रकाश के सीधे प्रभाव में आने लगेंगे। धरती की कक्षा-परिवर्तन से धरती पर जबरन जोड़े गए आसुरी सूत्र स्वतः टूट जाएँगे। जिस तरह धरती के सारे उल्लू मिलकर भी न तो सूर्योदय को रोक पाते हैं और न इससे फैलने वाले प्रकाश को, ठीक यही स्थिति आने वाले वर्षों में बनेगी। तब सृष्टि के सारे असुर मिलकर भी सृष्टि के इस सूर्योदय को अनेकों प्रयत्न करके भी न रोक पाएँगे।

जिस तरह धरती के सारे उल्लू मिलकर भी न तो सूर्योदय को रोक पाते हैं और न इससे फैलने वाले प्रकाश को, ठीक यही स्थिति आने वाले वर्षों में बनेगी। तब सृष्टि के सारे असुर मिलकर भी सृष्टि के इस सूर्योदय को अनेकों प्रयत्न करके भी न रोक पाएँगे।

धरती एवं मनुष्य के भाग्य व भविष्य में सुखद परिवर्तन करने वाला यह सूर्योदय भी होगा और इससे सभी का भाग्योदय भी होगा। इससे मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन के साथ पारिवारिक जीवन में भी सुखद परिवर्तन अनुभव करेगा। तब परिवारों की प्यार भरी संरचना का आनंद सभी उठा सकेंगे। ❑

प्रतिभा परिष्कार का आधार है-साधना

हमारा यह विश्वव्यापी विराट संगठन उपासना की धुरी पर खड़ा है, साधना के पुरुषार्थ से पुष्ट और ऊर्जावान है तथा आराधना के कर्तृत्व से विश्वमानवता के उत्थान में अहर्निश सक्रिय है। इस संगठन से जुड़ने वाले प्रत्येक जन परमपूज्य गुरुदेव की आध्यात्मिक विरासत के उत्तराधिकारी और उनकी ऊर्जा-शक्ति के संवाहक हैं। कोई किसी से जरा भी ज्यादा या कम नहीं, सब समान रूप से विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण हैं।

वर्तमान समय की चुनौतियों और उनके प्रत्युत्तर के लिए जिस प्रकार से हम सभी की अपनी-अपनी भूमिका सुनिश्चित हो सकती है; इस दिशा में, विगत अंकों में प्रेरणा-प्रकाश को विस्तीर्ण करने वाले अंत:भावों-विचारों को साझा किया जा चुका है। जन्म शताब्दी की वेला में उपासना के अनिवार्य अनुबंध और इससे जुड़े मार्मिक पहलुओं की चर्चा के पश्चात अब अगला क्रम 'साधना' से संबंधित मर्म को आत्मसात् करने का आता है।

पूज्य गुरुदेव द्वारा हम सभी को अपने कर्त्तव्य-पथ पर अडिग बने रहने तथा पुरुषार्थ की ऊर्जा और प्रचंडता को बनाए रखने के लिए जो मार्ग प्रशस्त किया गया है, उस मार्ग का प्रथम चरण उपासना है और दूसरा है—साधना। उपासना का ध्येय अपने अस्तित्व की कारण चेतना की समस्त स्फुरणाओं को जाग्रत बनाना है। जीवन में प्रेम, श्रद्धा, समर्पण, विश्वास के धागे मजबूत करना है। यह नींव है जिसके ऊपर महान पुरुषार्थ की, विराट संगठन के कर्तृत्व की इमारत खड़ी होनी है और इबारत लिखी जानी है—मानवता के उज्ज्वल भविष्य की।

उपासनारूपी प्रथम चरण की अनिवार्यता पूरी करने पर ही अगला कदम आता है—साधना का। ध्यान रहे यहाँ हमारे लिए साधना का ध्येय अत्यंत विशिष्ट और व्यापक है। जिस प्रकार पूज्यवर गुरुदेव और माताजी की जीवन-साधना का उद्देश्य एवं निष्कर्ष दोनों—विश्व मानवता का उत्थान और सर्वकल्याण रहा है, ठीक उसी प्रकार हमारे समक्ष भी साधना का वही आदर्श अनुकरणीय है।

अत: हमारी साधना का उद्देश्य व्यक्तिगत स्तर पर किसी सिद्धि, क्षमता, चमत्कार आदि की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकता और न ही मोक्ष, मुक्ति, स्वर्ग, आनंद जैसा कोई वैयक्तिक ध्येय। हमारे लिए तो साधना का लक्ष्य सामूहिक, संगठित और सार्वभौमिक है।

हमें कहीं सुदूर निर्जन वन, नदी, पहाड़, हिमालय की गुफाओं में जाने की आवश्यकता नहीं अपितु जहाँ हैं, जैसे हैं, वहीं से परिष्कार की, क्षमताओं के विकास की तथा जीवन की रीति-नीति में सुव्यवस्था-सुनियोजन को अपना लेने मात्र से साधना की प्रक्रिया और लक्ष्य, दोनों की सिद्धि हो जाती है।

जिस प्रकार हमारी सेवा लोकसेवा, जनसेवा है, उसी प्रकार हमारी साधना भी लोक-साधना, जन-साधना और समूह-साधना है। हमारी साधना संयुक्ति हमारे लाखों-करोड़ों परिजनों-साधकों की साधना के साथ है। सभी का लक्ष्य एक है और साधना-मार्ग भी एक ही है; वही जो पूज्य गुरुदेव ने सभी के लिए निर्दिष्ट किया है।

वह साधना-मार्ग है सूक्ष्मशरीर के शोधन का, प्रतिभा के संवर्द्धन का तथा प्रखरता और तेजस्विता को धारण कर सकने वाली पात्रता के विकास का। इस साधना-मार्ग के क्षेत्र में जो चीजें सम्मिलित हैं, उनका बाह्यजगत् में कोई आकार-प्रकार-अस्तित्व नहीं, सब कुछ भीतर है।

साधना का क्षेत्र भीतर है, बाहर कुछ नहीं। भीतर क्या है? भीतर है हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारा चित्त, जो जन्म-जन्मांतर के जटिल संस्कार लिए बैठा है, और भीतर है हमारा—अहंकार। इच्छा-आकांक्षा, कामना-वासना, ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ-संकीर्णता, अहंता-मूढ़ता—ये सारे उपद्रवकारी तत्त्व हमारी इसी भीतरी दुनिया में मौजूद हैं। जीवन और जगत् की अंतः-बाह्य समस्त परेशानियों-समस्याओं को उत्पन्न करने वाले मानवीय अंतराल के ये ही तत्त्व हैं। इनका शमन-समाधान कर जीवन को उन्नत बनाना ही साधना विज्ञान का कार्यक्षेत्र है।

पूज्य गुरुदेव के साधना संबंधी निर्देशों का अभिप्राय यही है—सूक्ष्मशरीर का शोधन-परिष्कार और प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण, जिसे उन्होंने प्रतिभा परिष्कार का नाम दिया। चूँकि मनुष्य जीवन की विदित क्षमताएँ सीमित हैं, परंतु इसके साथ ही इस जीवन में असीम और अनंत संभावनाओं-क्षमताओं, शक्ति-सामर्थ्यों का भंडार भी मौजूद है।

गागर में सागर, पिंड में ब्रह्मांड, व्यष्टि में समष्टि व मानव में भगवान प्रतिष्ठित होने की सत्यता हमारे शास्त्रों में व्याप्त है, परंतु इसकी अनुभूति और उपलब्धि का जो उपाय है, वह है साधना के द्वारा। ऋषि-मुनियों की हजारों-लाखों वर्ष की तपश्चर्या और योगाभ्यास के द्वारा खोजा गया जीवन को समुन्नत व समग्र बनाने का विज्ञान है—साधना मार्ग। पूज्यवर के अनुसार जीवन में जो प्रसुप्त है, उसे जाग्रत करना और जाग्रत हो पाए तो उसे अनुशासित-नियंत्रित व सुनियोजित करने की विधा का नाम है—साधना।

तप और योग इसके दो महत्त्वपूर्ण आयाम हैं। तप से जन्म-जन्मांतर के कुसंस्कारों-प्रारब्धों का क्षय होता है, जीवन का शोधन होता है तथा योग से सुप्त क्षमताओं का जागरण, विकास एवं कुशलता प्राप्त होती है।

तप और योग—दोनों हमारे साधना-मार्ग के व्यावहारिक और क्रियात्मक पहलू हैं, लेकिन इस पहलू के अनुसरण के पूर्व साधना के लक्ष्य की स्पष्टता और लक्ष्य प्राप्ति के प्रयोजन के संदर्भ में वैचारिक स्पष्टता की प्राप्ति अत्यंत ही आवश्यक है।

शिष्यों ने ऋषि से प्रश्न किया कि मंत्र प्रत्येक साधक पर समान प्रभाव क्यों नहीं दिखाते हैं?

ऋषि ने उत्तर दिया—''वत्स! मंत्रों का अवतरण मानवीय चेतना के उच्चतम तलों से हुआ है और ऋषिगण इस ज्ञान को सुरक्षित रखने का कार्य करते हैं। मंत्रों को सिद्ध मंत्रवेत्ता ऋषि ही कर सकते हैं, अन्य के सम्मुख मंत्र अपने रहस्य को नहीं खोलते। उनका प्रभाव पाने के लिए चेतना का परिष्कार आवश्यक है।''

वैचारिक अथवा सैद्धांतिक स्पष्टता से हमारी ध्येय के प्रति चलने की दृढ़ इच्छाशक्ति और संकल्प बल प्राप्त होता है तथा हजार बाधाओं-कष्टों के

सामने भी हम साधना-मार्ग पर लक्ष्यप्राप्ति तक अडिग बने रहते हैं।

वैचारिक स्पष्टता के लिए गुरुदेव ने जो उपाय बताएँ हैं, वे हैं—स्वाध्याय, सत्संग, चिंतन और मनन। अपने अस्तित्व के सार का पता लगाना ही स्वाध्याय है। इसी से मनुष्य को अपने स्वरूप और असीमित क्षमताओं से युक्त होने का बोध होता है।

हमारे सभी आर्ष ग्रंथ और सत्साहित्य—जो हमें आत्मसंवर्द्धन, आत्मनिर्माण, आत्मविकास और आत्मपरिष्कार के उपायों-प्रक्रियाओं और विचारों से अवगत कराते हैं, वे सभी स्वाध्याय के साधन हैं।

सत्संग का तात्पर्य है ऐसे युक्त और आप्तपुरुषों का संग, उनके वचनों का सान्निध्य प्राप्त करना, जिन्होंने साधना के दुर्गम मार्ग को जीतकर लक्ष्य सिद्धि की है; क्योंकि ऐसे महापुरुष, संत, साधक ही साधना के गूढ़ रहस्यों को अत्यंत सरलता और हमारी पात्रता के अनुरूप समझाने में समर्थ होते हैं। साधक के जीवन में सत्संग का लाभ किसी प्रत्यक्ष गुरु के मार्गदर्शन की भाँति फलीभूत होता है।

इसी प्रकार चिंतन और मनन भी क्रमिक उपाय हैं। चिंतन का ध्येय हमारी कमियों-कमजोरियों और त्रुटियों का पता लगाना तथा उनके समाधान की धारणा को सुदृढ़ बनाना है; जबकि मनन के द्वारा समाधान के उपायों तथा उन्हें अभ्यास में लाने की प्रक्रियाओं पर विचार करना है। उक्त चारों उपाय मिलकर साधना-मार्ग के भावनात्मक पक्ष को स्पष्ट कर देते हैं।

साधक को अपनी साधना का लक्ष्य, प्रयोजन और उसमें विसर्जित होने वाले अपने आत्मस्वरूप का बखूबी ध्यान बना रहता है। इसके पश्चात ही वह पूर्ण आत्मविश्वास और संकल्पयुक्त हो साधना मार्ग के प्रयोगात्मक पक्ष में गति करने का सुपात्र होता है। साधना के प्रयोगात्मक अथवा क्रियात्मक पक्ष में साधक को तप और योग का अवलंबन कर अपनी साधना को पूर्णता प्रदान करनी होती है।

तपश्चर्या से जीवन परिष्कृत और संस्कारित होता है तथा योग से क्षमतावान और संतुलित मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—यही हमारे सूक्ष्मशरीर का स्थान है। अनगिनत-जन्मों की यात्रा के कुसंस्कार, मल, विक्षेप, वृत्ति सब इसी क्षेत्र में जमा हैं। तप द्वारा इसी क्षेत्र को परिष्कृत कर पवित्रता और दिव्यता से युक्त बनाया जाता है।

पूज्य गुरुदेव द्वारा लिखित महाग्रंथ गायत्री महाविज्ञान में तप के संबंध में उपयुक्त और विस्तृत मार्गदर्शन मौजूद है। अतः हमें भटकने की आवश्यकता नहीं, अपितु अपने लिए तपश्चर्या की उपयुक्त प्रक्रिया को अपनाने मात्र की बात है। हमारी साधना-संस्कृति में तप को प्राचीनकाल से जीवनशुद्धि के सबसे प्रभावी उपाय के रूप में अपनाया जाता रहा है।

तप की ऐसी विधियाँ एवं तकनीकें, जिन्हें अपनाने के लिए व्यक्ति को अपना घर-परिवार आदि छोड़ने की आवश्यकता नहीं, वह जिस भी स्थिति-परिस्थिति में है, वही तपश्चर्या का लाभ ले सकता है। हमारे शास्त्रों में मुख्य रूप से तीन प्रकार के तप बतलाए गए हैं—शारीरिक, वाचिक और मानसिक।

शारीरिक शुद्धता, ब्रह्मचर्य, संयम, हिंसा न करना आदि शारीरिक तप हैं, सत्य और मधुर बोलना, जप आदि करना वाचिक तप हैं तथा प्रसन्न, शांत स्वभाव में बने रहते हुए सात्त्विक और श्रेष्ठ चिंतन करना, मनोनिग्रह अर्थात कुविचारों से बचाना मानसिक तप हैं। इस प्रकार के तप से सूक्ष्म शरीर का शोधन होता जाता है और आत्मबल तथा इच्छाशक्ति का लाभ प्राप्त होता है।

तप से मन, बुद्धि और चित्त की शुद्धि हो जाने पर उन्हें आत्मबोध में, आत्मज्ञान में लगाने की प्रक्रिया को योग कहा गया है, परंतु इसके साथ ही योग का एक दूसरा प्रयोजन भी है, वह है—हमारी आंतरिक सामर्थ्य को, प्रतिभा को विकसित, संतुलित और संरक्षित बनाए रखना।

हमारे लिए यह दूसरा प्रयोजन ही ध्येय की दृष्टि से वरेण्य है; क्योंकि हमें गुरुकार्य हेतु अपरिमित सामर्थ्य, कुशलता और प्रतिभा की आवश्यकता है। इसी निमित्त प्रज्ञायोग साधना का विधान है। इतने पर भी यदि आत्मबोध की प्राप्ति ही हमारे लिए योग का ध्येय हुआ तो वह भी **आत्मवत् सर्वभूतेषु और वसुधैव कुटुम्बकम्** की भाव चेतना बनकर अभिव्यक्त हो, तभी इष्ट कार्य में इसकी सार्थकता है।

साधना को पूज्यवर ने यों ही जीवन-साधना का नाम नहीं दिया है, वरन इसके पीछे उनके महान लक्ष्य की सिद्धि का मर्म समाहित है। उपासना से तो भावना-क्षेत्र परिष्कृत होता है। कारणशरीर जाग्रत होता है, आत्मा से परमात्मा का संबंध सुदृढ़ बनता है, परंतु साधना से सूक्ष्म और स्थूल—दोनों का संबंध है।

उपासना यदि हमारे अस्तित्व की नींव है तो साधना हमारे अस्तित्व का स्वरूप है। हम क्या थे, हैं और भविष्य में होंगे, का यथार्थ उत्तर केवल और केवल साधना से संभव है, अन्य कोई उपाय नहीं। इसी के अभाव में तो समस्त दुनिया आज कुविचार और कुमार्ग पर चल पड़ी है। उसे सही दिशा और सच्चिंतन से जोड़कर ही सुधारा जा सकता है।

उपासना भावपरक है, परंतु साधना चिंतनपरक क्षेत्र है। जीवन-साधना का अर्थ है जीवन में परिष्कृत चिंतन की प्रतिष्ठापना। परिष्कृत चिंतन ही तो हमारे विचारक्रांति-अभियान की धुरी है और इसे प्राप्त करने की एकमात्र कसौटी है—जीवन-साधना। ❑

एक संत से एक व्यक्ति ने पूछा कि महाराज! सदा सुखी रहने का क्या उपाय है? संत ने उत्तर देने के स्थान पर उसे एक छोटा-सा कंकड़ दिया और उसे मुट्ठी में बंद करके अपने सिर के ऊपर उठाने को कहा।

उस व्यक्ति ने संत के निर्देश का पालन किया। कंकड़ का वजन ज्यादा नहीं था तो थोड़ी देर तो उस व्यक्ति को कोई कष्ट नहीं हुआ, पर ज्यादा देर तक हाथ ऊपर रखे रहने पर उसका हाथ दुःखने लगा, तो संत ने उससे अपना हाथ नीचे कर लेने को कहा। फिर उसे समझाते हुए बोले—"पुत्र सदा सुखी रहने का यही राज है। जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, पर जो जीवन में समस्याएँ हैं वे चाहे इस कंकड़ की तरह छोटी ही क्यों न हों, उन्हें देर तक पकड़े रहने पर वो स्थायी दुःख का कारण बन जाती हैं। इसलिए समस्याओं को छोड़ देने वाले ही सुखी रहते हैं।"

गुरु ने किया बहुत उपकार

आगे आने वाले देखेंगे, अध्यात्म शक्ति कितनी अपार।
प्रोत्साहन का बल दे करके, गुरु ने किया बहुत उपकार॥

तपोनिष्ठ हो, वेदमूर्ति बन, संयम-सेवा व्रत अपनाया,
युगसाहित्य लिखा अतिपावन, प्रत्येक पक्ष पर कलम चलाया,
किया प्रशिक्षित जनमानस को, बहुतों को दिया प्रज्ञा उपहार।
प्रोत्साहन का बल दे करके, गुरु ने किया बहुत उपकार॥

स्थूल शक्ति से बड़ी सूक्ष्म है, कारण उससे भी महान है,
उतरे आचरण व जीवन में, मूल्यवान बस वही ज्ञान है,
सच्चा अध्यात्म प्राप्त करने हित, छोड़ना पड़ता है अहंकार।
प्रोत्साहन का बल दे करके, गुरु ने किया बहुत उपकार॥

जगा आत्मविश्वास जगत् में, मन वांछित फल हम पाएँ,
श्रद्धा में शक्ति अपार भरी है, हम उसको समझें-समझाएँ,
सूर्योदय से हो जाता है, दूर सभी जग का अहंकार।
प्रोत्साहन का बल दे करके, गुरु ने किया बहुत उपकार॥

परमात्मा का अंश मनुज है, वह अपने को पहचाने,
गुरु से ज्ञान प्राप्त करने की, पूरी श्रद्धा से मन में ठाने,
श्रद्धा-स्नेह, समर्पण द्वारा, गुरु को करें हम स्वीकार।
प्रोत्साहन का बल दे करके, गुरु ने किया बहुत उपकार॥

—विष्णु शर्मा 'कुमार'

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

के

समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड – 5

साधना से सिद्धि-1

साधना से सिद्धि प्राप्त होती है । अपनी चंचल चित्तवृत्तियों को साध लेना ही साधना है । इसमें मन का संयम और उसके कषाय–कल्मषों की मुक्ति आवश्यक है । इस ग्रंथ में साधना के इसी रहस्य को उद्घाटित किया गया है–

- साधना की तात्त्विक पृष्ठभूमि ।
- साधना का स्वरूप और विज्ञान ।
- साधना का वातावरण ।
- साधना में आहार का विधान ।
- साधना में मन की भूमिका ।
- साधना में सूक्ष्मशरीर का विकास ।
- साधना से अलौकिक सिद्धियों का संबंध ।

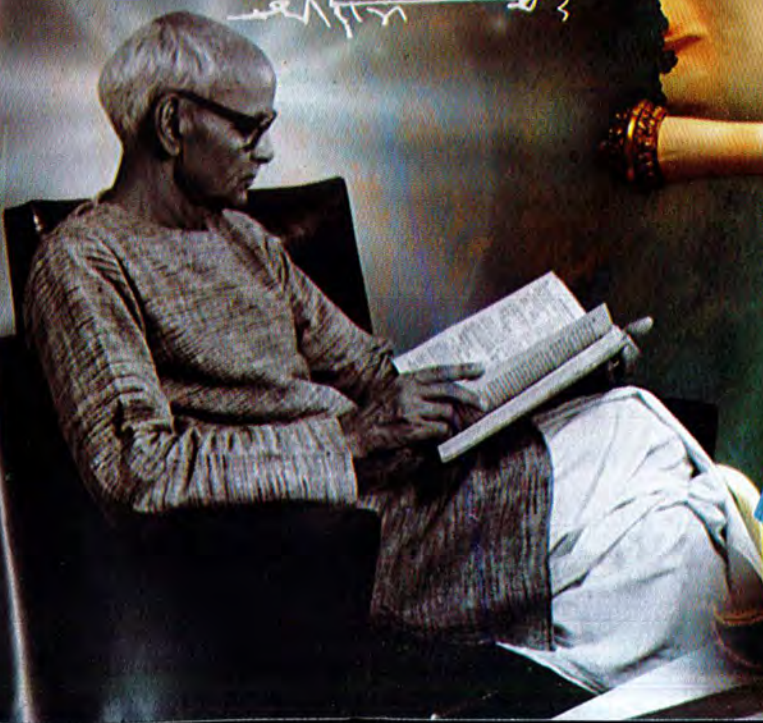

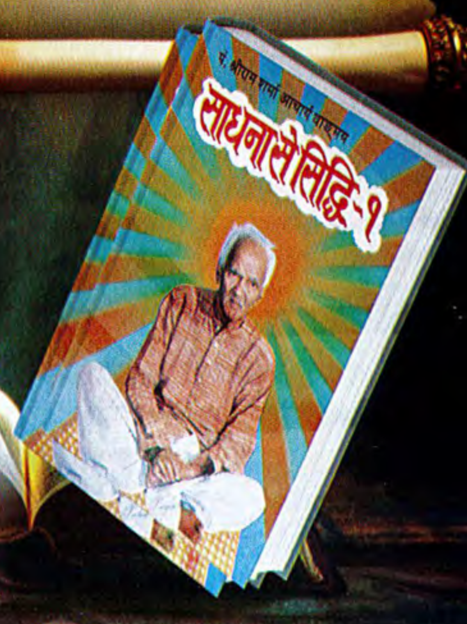

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 04 / 2025
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

युगतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार में नवीकृत 'देव संस्कृति दिग्दर्शन प्रदर्शनी' का लोकार्पण

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक—मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा–वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक—डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल— akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org